मान मंदिर बरसाना

मासिक पत्रिका, वर्ष १०, अंक ०४, श्रीकृष्ण सं.५२५२, 'चैत्र-वैशाख' वि.सं. २०८३ (अप्रैल २०२६ ई.)

श्रीब्रजरसेश्वरी
'राधिकारानी'

मूल्य १०/-

श्रीअष्टमहासखियों से सेवित ‘श्रीराधामाधव’ युगलरसराज

+

विषय-सूचिका

क्रमांक	प्रसंग	पृष्ठांक
१	सेवा-भाव से 'अहं' का नाश	०६
२	साधुता का स्वरूप	०९
३	संकीर्तन-आराधक 'श्रीमुकुन्दहरिजी'	१०
४	संसार से सावधान	१५
५	सर्वोच्च साधन 'रसीली भक्ति'	१७
६	परम परमार्थ 'श्रीभगवत्प्रेम'	१९
७	राम-जनम सुखमूल	२३
८	विशेष लाभदायक 'गौ-दुग्ध-घृत'	०८
९	श्रीराधारानी की अष्टमहासखियाँ	२४
१०	सच्चा प्रेम 'समर्पण भाव'	३३

परम पूज्यश्री रमेश बाबा महाराज जी द्वारा सम्पूर्ण भारत को आह्वान –

"मजदूर से राष्ट्रपति और झोंपडी से महल तक रहने वाला प्रत्येक भारतवासी विश्वकल्याण के लिए गौ-सेवा-यज्ञ में भाग ले।"

*** योजना ***

अपनी आय से १ रुपया प्रति व्यक्ति प्रतिदिन निकालें व मासिक, त्रैमासिक, अर्धवार्षिक अथवा वार्षिक रूप से इकट्ठा किया हुआ सेवाद्रव्य किसी विश्वसनीय गौसेवा प्रकल्प को दान कर गौरक्षा कार्य में सहभागी बन अनन्त पुण्य का लाभ लें । हिन्दूशास्त्रों में अंशमात्र गौसेवा की भी बड़ी महिमा का वर्णन किया गया

INSTAAL करें --- PLAY STORE से----- MAANINI APP

बाबाश्री के सत्संग/कीर्तन/भजन, साहित्य, आदि यहाँ से FREE - DOWNLOAD कर सकते हैं व सुन सकते हैं ।

श्रीमानमंदिर की वेबसाइट www.maanmandir.org के द्वारा आप प्रातःकालीन सत्संग का ८.३० से ९:३० बजे तक तथा संध्याकालीन संगीतमयी आराधना का सायं ६:०० से ८:०० बजे तक प्रतिदिन live व d-live प्रसारण देख सकते हैं ।

संरक्षक- श्रीराधामानबिहारीलाल, प्रकाशक – **राधाकान्त शास्त्री, मानमंदिर ,गह्वरवन, बरसाना, मथुरा** (उ.प्र.)
mob. राधाकांत शास्त्री ....9927338666, Website :www.maanmandir.org ,
(E-mail :info@maanmandir.org)

विशेष:- इस पत्रिका को स्वयं पढ़ने के बाद अधिकाधिक लोगों को पढ़ावें, जिससे आप पुण्यभाक् बनें और भगवद्-कृपा के पात्र बनें। हमारे शास्त्रों में भी कहा गया है – सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च तपो दानानि चानघ । जीवाभयप्रदानस्य न कुर्वीरन् कलामपि।।(श्रीमद्भागवत ३/७/४१) अर्थ:- भगवत्तत्त्वके उपदेश द्वारा जीव को जन्म-मृत्यु से छुड़ाकर उसे अभय कर देने में जो पुण्य होता है; समस्त वेदों के अध्ययन, यज्ञ, तपस्या और दानादि से होनेवाला पुण्य उस पुण्य के सोलहवें अंश के बराबर भी नहीं हो सकता ।

इस पत्रिका को आप google chrome पर जाकर सीधे free download कर सकते हैं आपको केवल इतना सर्च करना है-
हमारे बारे में । मान मंदिर सेवा संस्थान ट्रस्ट (यहाँ से आप पत्रिका सीधे download कर सकते हैं)

प्रकाशकीय

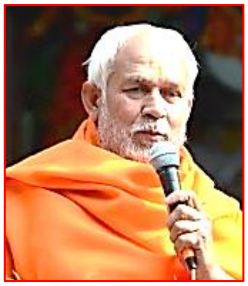

जिस वृत्ति से श्रीहरि प्रसन्न होते हैं, वह है 'सेवाभाव' । 'सेवा' एक ऐसी चीज है कि मनुष्य-जीवन की सार्थकता भगवद्-सेवा और भक्त-सेवा में ही निहित है । श्रीकबीरदासजी कहते हैं – **'कबिरा यह तन जात है, सके तो ठौर लगाय । कै सेवा कर साधु की, कै हरि के गुण गाय ॥''** ये सब बातें केवल हमारे ग्रंथों में मात्र कही ही नहीं गयी हैं, प्रत्युत भगवान् ने स्वयं लोकादर्श के लिए सब करके दिखाया है । स्वयं श्रीभगवान् ने सेवा करके यह दिखाया कि 'सेवा' केवल एक साधन ही नहीं है अपितु वह एक मानसी पाप व तापों को धोने वाली गंगा है । भागीरथी गंगा तो केवल शारीरिक पाप नष्ट कर सकती है किन्तु सेवा-गंगा शारीरिक-पापों के अलावा मानसी-पापों का भी शमन कर देती है । श्रीशुकदेवजीमहाराज ने कहा है – **तैस्तान्यघानि पूयन्ते .... तदपीशाङ्घ्रिसेवया ॥** (श्रीभागवतजी ६/२/१७)

तप, दान, जप आदि से पाप तो नष्ट हो जायेंगे किन्तु पापों ने जो हृदय को मलिन कर दिया है; वह जप, दान, तप आदि के द्वारा भी शुद्ध नहीं हो सकता है, वह केवल भगवान् व भक्तों के चरणों की सेवा से ही शुद्ध होगा । लेकिन सेवा में सात बातें ग्राह्य और सात त्याज्य बताई गईं हैं, इनमें से जो सात चीजें ग्राह्य हैं, उनमें सबसे पहली चीज है – १.'विश्वास' – यदि विश्वास नहीं है तो सेवा की नींव समाप्त हो गयी । २.'अन्तःकरण की पवित्रता' – सेवा के लिए दूसरी आवश्यक वस्तु है 'आत्मशौच', कामना रहित अन्तःकरण ही शुद्ध है । ३.'गौरव' – छोटी से छोटी सेवा भी गौरव-बुद्धि से की जाए, सेवा को छोटी समझकर हिचकना नहीं चाहिए बल्कि गौरव का अनुभव करना चाहिए । ४. 'संयम' – इन्द्रियों का दमन । ५. 'शुश्रूषा' – सेवा की सदा इच्छा बनी रहे । ६. 'सौहार्द' – प्रेमपूर्वक सेवा की जाए । ७. 'मधुर-भाषण' वाणी से मधुर व्यवहार करना चाहिए । सात चीजें त्याज्य हैं – १. 'काम' – सेवा में स्वार्थ सम्बन्धी कोई भी कामना नहीं होनी चाहिए । २. 'दम्भ' – दिखावा नहीं होना चाहिए । ३. 'द्वेष' – द्वेष नहीं होना चाहिए । ४. 'लोभ' – किसी प्रलोभ (लालच) से सेवा नहीं करना चाहिए । श्रीभरतलालजी ने इस बात को कहा है –

जो सेवकु साहिबहि सँकोची । निज हित चहइ तासु मति पोची ॥
सेवक हित साहिब सेवकाई । करै सकल सुख लोभ बिहाई ॥ (श्रीरामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड -२६८)

अर्थात् जो सेवक 'स्वामी' को संकोच में डालकर अपना भला चाहता है, वह नीच बुद्धि वाला है । सच्चा सेवक वही है, जो अपने सब सुख और लोभ को छोड़कर 'स्वामी' की सेवा करे । इसलिए सेवा में लोभ भी बहुत बड़ा दोष है । ५. 'मद' – सेवा करने के बाद मन में अहंकार नहीं होना चाहिए । ६. 'अघ' – पाप । ७. 'प्रमाद' – सेवा में मनुष्य को कभी भी आलस नहीं करना चाहिए । 'भक्त' को जितना लाभ 'सेवा' से होता है, उतना अन्य किसी साधन से नहीं होता । अन्य साधन तो 'अहम्' को जाग्रत कर देते हैं और सेवा से 'अहं भाव' नष्ट हो जाता है । बिना सेवा किये न अहंकार नष्ट होगा और न ही हृदय शुद्ध होगा । प्रायः हर प्राणी 'स्वामी' बनना चाहता है, 'सेवक' कोई विरले ही बनना चाहते हैं । इसलिए भगवान् की विशेष कृपा जिस पर होती है, वही सेवा कर पाता है । जब जीव 'सेवापरायण' हो जाता है, तब समझिये कि भक्ति वहाँ आ गयी है । जैसे केवल मुख में भोजन दे दो तो बाकी सब अंगों में अपने-आप तृप्ति हो जायेगी; वैसे ही भक्तों की सेवा करने से अपने-आप सबकी सेवा हो जाती है – **"यथा तरोर्मूलनिषेचनेन.....सर्वार्हणमच्युतेज्या ॥"** (श्रीभागवतजी ४/३१/१४) । सेवाभाव की उत्पत्ति श्रीराधारानी की कृपा का हेतु है । सेवाभाव से ही श्रीजी का सच्चा प्रेम मिलता है ।

कार्यकारी अध्यक्ष

राधाकान्त शास्त्री
श्रीमानमन्दिर सेवा संस्थान ट्रस्ट

॥ राधे किशोरी दया करो ॥

हमसे दीन न कोई जग में,
बान दया की तनक ढरो ।
सदा ढरी दीनन पै श्यामा,
यह विश्वास जो मनहि खरो ।
विषम विषय विष ज्वालमाल में,
विविध ताप तापनि जु जरो ।
दीनन हित अवतरी जगत में,
दीनपालिनी हिय विचरो ।
दास तुम्हारो आस और की,
हरो विमुख गति को झगरो ।
कबहुँ तो करुणा करोगी श्यामा,
यही आस ते द्वार पर्‌यो ।

‘सेवा-भाव’ से ‘अहं’ का नाश

बाबाश्री के प्रातःकालीन-सत्संग ‘७/८/२००३’ से संकलित

संकलनकर्त्ता – अध्यक्ष – डॉ. श्रीरामजीलालजी शास्त्री,
श्रीमानमंदिर सेवा संस्थान ट्रस्ट

श्रीभगवान् ने कहा है कि जब तक जीव के अन्दर ‘अहं’ है; तब तक उसको जन्म लेना पड़ता है, मरना पड़ता है, कर्मफल भोगना पड़ता है । जब तक ‘अहं’ है अर्थात् यह भाव है कि मैं शरीर हूँ, तब तक हमको संसार में जन्म लेना पड़ेगा । ‘अहंकार’ हमारे भीतर है, यह कैसे पता पड़े क्योंकि कोई आदमी बहुत दण्डवत प्रणाम करता है, सबके चरण स्पर्श करता है तो लोग समझते हैं कि यह बड़ा दीन है, इसमें अहंकार नहीं है, बड़ा ही दैन्य भाव है परन्तु पाँव छूने से यह निश्चय नहीं है कि उस व्यक्ति का ‘अहं भाव’ समाप्त हो गया है । हो सकता है कि वह दिखावा कर रहा हो अथवा दूसरों की दृष्टि में अपने को दीन प्रमाणित करना चाहता हो । यह कैसे निश्चय पता पड़े कि व्यक्ति के अन्दर ‘अहं’ बिल्कुल नहीं है । गीता में भगवान् ने कहा कि कोई व्यक्ति युद्ध कर रहा है तो यह जरूरी नहीं है कि उसके अन्दर ‘अहं’ हो । हनुमानजी आदि बड़े-बड़े महापुरुषों ने युद्ध किया किन्तु उनके अन्दर कोई अहं नहीं था । ऐसे अहं शून्य भक्त सारी दुनिया का विनाश कर दें, तब भी उनको कोई पाप नहीं लगेगा ।

यस्य नाहङ्कृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते । हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते ॥ (श्रीगीताजी १८/१७)

जिस मनुष्य के हृदय में ‘मैं कर्ता हूँ’ ऐसा भाव नहीं है तथा जिसकी बुद्धि सांसारिक पदार्थों में और कर्मों में लिप्त नहीं होती, वह मनुष्य इन सब लोकों को मारकर भी वास्तव में न मारता है और न ही पाप से बँधता है । लड़ाई-झगड़ा करना ‘अहं’ का कार्य है किन्तु गीता के अनुसार यह जरूरी नहीं है कि युद्ध में निरत किसी महापुरुष में ‘अहं’ हो । संसार के सब कार्य करते हुए भी महापुरुषों में ‘अहं’ नहीं होता है । जनकादि महापुरुष राजा थे, राज्य का कार्य करते हुए, गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए भी उनमें ‘अहं’ नहीं था । अतः वह कौन-सा सूत्र है, जिससे पता पड़ जाए कि हमारे अन्दर ‘अहं’ है । श्रीरामचरितमानस के अनुसार ‘एकतनु’ जैसे बड़े विरक्त महात्मा का वेष धारण करने वाले लोग महामायावी थे । जंगल में तपस्या करते हुए, सांसारिक विषयों का सेवन न करने और पैसा न रखने पर भी ‘एकतनु’ महामायावी था, जिसने परम धार्मिक राजा प्रतापभानु का विनाश कर दिया । प्राचीनकाल में राक्षस लोग बड़ा कठोर तप करते थे । इसलिए अहं क्या है, इसका लक्षण कैसे पता चलता है ? कैसे पता चले कि हमारे अथवा किसी दूसरे व्यक्ति के अन्दर अहं है कि नहीं क्योंकि बाहर का वेष परिवर्तन करने से, वस्त्र बदलने से अहं का पता नहीं चलता । विरक्त साधु बनने से पता नहीं चलता, लड़ाई करने वाले को पता नहीं पड़ता, भोग भोगने वाले को पता नहीं चलता । राजा चित्रकेतु के एक करोड़ रानियाँ थीं । ऐसी दशा में ‘अहं’ एक ऐसा पेचीला रोग है, जिसको समझा नहीं जा सकता है; लेकिन भगवान् ने गीता में इसका निर्णय किया है कि ‘अहं’ को पहचानने का एक ही लक्षण है –

प्रकृतेः क्रियामाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः । अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ॥ (श्रीगीताजी ३/२७)

भगवान् की शक्ति ही प्रकृति है । सारे कार्य प्रकृति के द्वारा होते हैं किन्तु अहंकार जिसके भीतर आ जाता है, वह समझता है कि मैं कर रहा हूँ; अहंकार की यही पहचान है । ‘मैं कर रहा हूँ’ – जब तक यह भाव है, तब तक ‘अहं’ है । ‘मैं कर रहा हूँ’ के स्थान पर हर समय इस बात की प्रतीति होनी चाहिए कि ‘प्रभु करवा रहा है’ । ऐसी स्थिति में न काम सतायेगा और न क्रोध सतायेगा क्योंकि अब तो प्रभु जैसा करा रहा है, वही हो रहा है । यदि कोई कहता है कि मैं अब कुछ काम नहीं करूँगा, मैं तो अब साधु बन जाऊँगा तो यह और अधिक मूर्खता है । क्रिया का त्याग कर दोगे तो पता कैसे चलेगा कि मैं कर रहा हूँ अथवा नहीं । कर्म करने पर ही पता चलता है कि उसके साथ ‘मैं’ अर्थात् ‘अहं’ कितना जुड़ा हुआ है । कर्म का त्याग करने पर यह पता नहीं चलेगा । कर्म के करने पर पता चलता है कि मैं कर रहा हूँ, यह अनुभव होता है

अथवा प्रभु करवा रहे हैं, ऐसा अनुभव होता है । **'जो कुछ किया सो तुम किया, मैं कुछ किया सो नाहिं । कहो कही कि मैं किया, तुमहीं थे मुझ माहिं ॥'** श्रीसूरदासजी ने कहा है – **'करी गोपाल की सब होय ।'** 'मैं कर रहा हूँ' – जब तक हमें इसकी प्रतीति होती है, तब तक हमारे अन्दर 'अहं' है; चाहे हम प्रतिदिन हजारों दण्डवत प्रणाम करें, हजारों छोटे-छोटे कार्य जैसे किसी के मल-मूत्र साफ़ करने का कार्य, शौचालय में सफाई का कार्य करें लेकिन जब तक मनुष्य सोचता है कि यह कार्य मैं कर रहा हूँ, तब तक उसके अन्दर 'अहं' है । तुम सेवा कर रहे हो किन्तु फिर भी तुम्हारे अन्दर यह भाव है कि मैं सेवा कर रहा हूँ तो अहं तो अभी जीवित ही है । यदि कोई साधु भिक्षा माँगकर लाता है और सोचता है कि मैं भिक्षान्न माँगकर लाया और मैं ही सबको खिला रहा हूँ तो उसके भीतर 'अहं' तो जीवित ही है । कोई भी कार्य कर रहे हो परन्तु तुमको यह प्रतीति हो रही है कि मैं कर रहा हूँ तो अभी तुम्हारा 'अहं' तो जिन्दा ही है, 'अहं' कहाँ मरा ? इसीलिए 'अहं' को पहिचानने का उपाय यही है कि कर्म खूब करे, कर्म से भागे नहीं और उस कर्म को करते हुए यह भाव न आये कि मैं कर रहा हूँ । मेरे सद्गुरुदेव बाबा प्रियाशरणजी महाराज यह उदाहरण प्रायः देते थे कि बन्दर किसी छोटे सर्प को पकड़ लेता है और उसके मुख को रगड़ता है, इसके बाद सर्प को अपने मुख के पास लाकर फूँ-फूँ करता है । सर्प क्रोधी जीव है, जब वह जीवित होता है तो इस स्थिति में क्रोध से फुफकारता है तो बन्दर समझ जाता है कि अभी यह जिन्दा है अर्थात् अभी इसके अन्दर अहंकार है । ऐसी दशा में बन्दर फिर से सर्प के फन को भूमि पर घिसता है और अपने मुख के पास लाता है, उसकी प्रतिक्रिया को देखता है । जब तक सर्प जीवित रहता है, क्रोध से फनफनाता है, काटने का प्रयास करता है तो बन्दर उसके मुख को लगातार पृथ्वी पर घिसता रहता है और जब सर्प मर जाता है तब बन्दर कितना ही उसको अपने मुख के पास लाकर फूँ-फूँ करे, सर्प की कोई प्रतिक्रिया नहीं होती है । इसी तरह कर्म करने पर ही पता पड़ता है कि हमारे अन्दर 'अहं' है कि नहीं है । कर्म एक तरह का चिकित्सा-परीक्षण (medical check up) है, जिससे पता चलता है कि तुम्हारे अन्दर कौन-सा रोग है ? यदि तुमको कर्म करते समय यह प्रतीति होती है कि मैं कर रहा हूँ तो समझ लो कि अभी हमारे अन्दर 'अहं' जीवित है और यदि कर्म करने पर यह भाव नहीं आया कि मैं कर रहा हूँ, जो कुछ मेरे द्वारा हो रहा है, सब प्रभु ही कर रहे हैं । **'सबहिं नचावत राम गोसाईं ।'** ऐसा भाव उत्पन्न हो रहा हो तो समझ लो कि तुम्हारा 'अहं' घट रहा है और घटता ही जाएगा । इसलिए 'अहं' को दूर करके कर्म करे और 'अहं' को पहिचानने का रास्ता केवल कर्म ही है । ऐसा अच्छा कर्म करो, जिससे दस लोगों को लाभ हो परन्तु लाभदायक कर्म को करने के बाद यह भाव न आये कि यह कार्य मैंने किया, जिससे अनेक लोगों को लाभ हुआ । भगवान् ने गीता का यही सार बताया कि कर्म अवश्य ही करो किन्तु कर्म के बाद – 'कर्ताहमिति मन्यते' – मैं कर्म को कर रहा हूँ, यह भाव न आये । वस्तुतः श्रद्धापूर्वक सेवा करने से ही अंतःकरण के मल 'अहंकार' का विनाश अति शीघ्र होता है ।

....

श्रीहनुमानजीमहाराज का अवतरण धराधाम में सेवा-सत्संग 'कथा-कीर्तन' की महिमा को विशेष रूप से प्रकट करने के लिए हुआ है । इसीलिये कहा गया है – 'रुद्र देह तजि नेह बस, वानर भए हनुमान ।' प्रत्येक विषम परिस्थिति में सेवाराधना की अनुकूलता सदा बनी रहे, इसी कारण वानर रूप धारण किया है । लीला-संवरणकाल में जिस समय श्रीभगवान् ने नित्य धाम में जाने के लिए तैयार होने लगे तो श्रीहनुमानजी ने श्रीप्रभु से प्रार्थना की – 'यावत् तव कथा लोके विचरिष्यति पावनी ।तावत् स्थास्यामि मेदिन्यां तवाज्ञामनुपालयन् ॥' (श्रीवाल्मीकिरामायण, उत्तरकाण्ड -१०८/३५)

'हे भगवन् ! जब तक पृथ्वी पर आपकी परम पावनकारिणी कथा है, तब तक मैं आपकी आज्ञा का अनुपालन करते हुए यहीं रहूँगा ।' इस भावना को सुनकर श्रीठाकुरजी ने सर्वाधिक प्रसन्न होकर हृदय से आशीर्वाद दिया । इसीलिये कथा-कीर्तन के प्रचार-प्रसार की सेवा के लिए ही 'हनुमानजी' वानर-स्वरूप में 'चैत्र-पूर्णिमा' को प्रकट हुए हैं ।

विशेष लाभदायक 'गौ-दुग्ध-घृत'

भावाभिव्यक्ति – परम गौ-सेवी

संत 'श्रीब्रजशरणजीमहाराज'

श्रीमाताजी गौशाला, श्रीमानमन्दिर सेवा संस्थान ट्रस्ट

देशी गाय के घी के अनेकों लाभ हैं । गाय का घी नाक में डालने से पागलपन, नाक का बढ़ा हुआ माँस, सिर दर्द, नेत्रज्योति बढ़ाना व जिनको खर्राटे आते हों ५ दिन में बन्द १-१ बूँद डालना है । ★ गाय का घी २०-२५ ग्राम डोरा वाली मिश्री में मिलाकर खिलाने से भाँग, गाँजे का नशा कम हो जाता है । ★ गाय का घी नाक में डालने से लकवा में बहुत लाभकारी है, दिमाग तरोताजा हो जाता है, कोमा में लाभ दायक, बालों का झड़ना कम हो जाता है, दिमाग तेज हो जाता है, स्मरणशक्ति बढ़ जाती है । ★ हाथ-पाँव में जलन होने पर पैर के तलवे में गाय के घी की मालिस से लाभ होता है ।★ गाय का घी एक चम्मच खिलाने से हिचकी बन्द हो जाती है । ★ गाय के दूध में २ चम्मच घी मिलाकर रात को पीने से कब्ज दूर होती है ।★ देशी गाय के घी में कैंसर से लड़ने की अचूक क्षमता होती है। स्तन कैंसर व आंत के खतरनाक कैंसर से बचा जा सकता है ।★ फफोलों पर गाय का घी लगाने से आराम मिलता है। ★ एक चम्मच पिसी काली मिर्च, १ चम्मच बूरा या देशी खांड में एक चम्मच गाय का घी मिलाकर खाने से नेत्र ज्योति बढ़ती है व पित्ती निकलना भी ठीक होता है ।

गाय की छाछ – जठराग्नि को प्रदीप्त करने वाला (पाचन क्रिया तीव्र होकर भूख अच्छी लग कर भोजन पचता है, त्रिदोष नाशक,_अर्श (बवासीर), भगन्दर का नाश करने वाली, हृदय को बल देने वाली, पथरी को दूर करने वाली, ठन्डक प्रदान करने वाली, दोपहर में भोजन करने के बाद पानी न पीकर छाछ पीना चाहिए दही से मक्खन निकालकर पानी मिला दिया जाए वही छाछ कहलाती है । गाय का दही विशेष मीठा, रुचिकारक, अग्नि प्रदीपक, हृदय को प्रिय, पुष्टिकारक और वातनाशक है, गाय का दही सर्वोत्तम है ।_दही को मथकर निकाला गया पौष्टिक पेय 'मट्ठा' छाछ कहलाता है । यह सभी के लिए उत्तम और सामान्य रूप से शरीर के लिए हितकारी है। इस छाछ का प्रयोग प्राचीन काल में गाँव देहात में ज्यादा होता था, ज्यादातर गरीब लोग छाछ के साथ रोटी खाते थे । और छाछ आज भी गाँवों में मक्खन निकालने के बाद मुफ्त में बाँट दी जाती है। लेकिन याद रहे केवल देशी गाय के दूध की ही छाछ होनी चाहिए क्योंकि यही शरीर को ज्यादा लाभ देती है। इसके नियमित प्रयोग करने से आँखों की ज्योति, दाँतों की मजबूती, अरुचि, मंदाग्नि, उल्टी, रक्तचाप, वायु गोला, पीलिया, मोटापा, मूत्र रोग, अधिक प्यास लगना, पेट दर्द, तिल्ली का बढ़ना, दस्त, प्रमेह आदि ठीक होते हैं। गाय के दूध से बनी छाछ किसी भी प्रकार के नशे जैसे गांजा, चिलम (चरस), तम्बाकू, शराब, हेरोइन, स्मैक आदि से होने वाले प्रभाव धीरे-धीरे कम होने लगते हैं यदि आप नियमित कुछ महीना तक सेवन करते हैं तो नशे की इच्छा ही खत्म होने लगती है ।

गौ-माता आधारित खेती के सुझाव – **गौ**-समाधि की खाद बहुत उपयोगी होती है । गाय की मृत्यु हो जाने पर उसका चमड़ा उतारने के लिए किसी को नहीं देना चाहिए । उसे अपने खेत में ही समाधि दे देनी है । समाधि देने का तरीका – सर्वप्रथम एक पाँच फुट लम्बा, चार फुट चौड़ा, चार फुट गहरा गड्ढा खोदें इसके लगभग चार इंची मोटी गाय के गोबर की परत बिछा दें फिर गौ-माता के मृतक शव को गड्ढे में लिटा दें । इसके बाद ऊपर से ५० किलो डली वाला मोटा नमक डाल दें, इसके बाद ऊपर से मिट्टी डालकर गड्ढा बन्द कर दें । इस तरह बन्द करें कि समाधि के अन्दर पन्नी का प्रवेश न हो । एक वर्ष बाद गड्ढे को खोदें खाद निकाल लें, वह भी सुगन्धित खाद निकलेगी सब कुछ गल चुका होता है । दूसरा प्रयोग और कर सकते हैं, गौ-माता की किसी भी साफ भूमि में समाधि दे दें। इसके बाद उस पर फल वाला भी पेड़ लगा दें तो उस फलदार पेड़ में ५० प्रतिशत अधिक फल लगेंगे और पेड़बहुत जल्दी फल देने वाला भी होगा, कोई भी बीमारी पेड़, फल, पत्तों में नहीं लगेगी ।

कीटों के रोक-थाम के लिए उपाय – इसमें गौ मूत्र का प्रयोग कीड़ों की रोक-थाम के लिए अति उत्तम है। गौ-मूत्र गाय, बैल, नन्दी, बच्चा किसी का भी हो सकता है। कितना भी पुराना हो उपयोगी है। एक लीटर गौ-मूत्र को छान कर १० लीटर पानी में मिला लें। इसके बाद मशीन से छिड़काव कर दें, जब कीड़ा लगने वाला हो उससे पहले ही छिड़काव कर दें । दुबारा १५ दिन बाद कर दें, कीड़ा लगेगा ही नहीं ।

गौ-माता की छाछ का प्रयोग – किसी भी बर्तन में छाछ, मट्ठा तक ४० दिन के लिए मुँह बाँध कर रख दें, इसके बाद १० गुना पानी मिलाकर छिड़काव करें, कीड़ा नहीं लगेंगे ।

दूध का प्रयोग – एक लीटर देशी गाय के दूध में १५ लीटर पानी मिलाकर मिर्च की फसल पर छिड़काव करने से कीड़े नहीं लगते हैं ।

अमृत पानी बनाना – एक एकड़ के लिए दस किलो देशी गाय का गोबर, आधा किलो शहद के साथ खूब मलने के बाद दही से निकला हुआ २५० ग्राम देशी गाय का घी मिलाकर खूब मलिए । इन तीनों मिश्रण को दो सौ लीटर पानी में मिला दें बुवाई से पहले इस मिश्रण का छिड़काव करवा दें। इससे गन्ना, अंगूर, केला व अनाज और साग सब्जी में अत्यधिक उत्पादन लिया जा सकता है। यदि खेत कमजोर है तो फसल आने के एक माह बाद भी पानी के मुहारे पर डाल दिया तो सारे खेत में फैल जाएगा।

गौ-मूत्र का छिड़काव – गौ-मूत्र खाद्य - दवा का काम भी करता है। गौ-मूत्र तीन बार फसल के जीवन क्रम में छिड़कने से खाद्य सूक्ष्म द्रव्यों की पूर्ति होती है। फसल की प्रथमावस्था में ५ प्रतिशत गौ-मूत्र पानी में मिलाकर, इसके बाद १० प्रतिशत, अन्त में १५ प्रतिशत फलने-फलने से पूर्व छिड़कें ।

पंचगव्य बनाना – एक एकड़ के लिए १० किलो देशी गाय का गोबर, ५ लीटर गौ-मूत्र, २ लीटर दूध, एक किलो दही, २५० ग्राम घी को दो सौ लीटर पानी में मिलाकर परेविट के बाद या जब भी खेत की मिट्टी गीली रहती है खेत में बिखेर दें / छिड़क दें इससे जीवाणुओं को पोषण मिलता है ।

साधुता का स्वरूप

बाबाश्री के सत्संग (६/८/२००३, २५/११/२००३) से संकलित

श्रीबाबामहाराज कहते हैं कि मेरे ब्रजवास के प्रारम्भिक दिनों में जब ब्रज के मूर्धन्य सन्त श्रीप्रियाशरणबाबा महाराज के साथ मुझे सत्संग का अवसर प्राप्त होता था तो उन्होंने मुझे ब्रज में रहने वाले साधु की आदर्श रहनी की शिक्षा देते हुए कहा था कि ब्रजवासियों के घरों से भिक्षा माँगकर प्रसाद अपनी कुटिया में ही आकर पाना । कहीं अन्यत्र बैठकर प्रसाद मत पाना । चाहे कितनी भी आपत्ति हो परन्तु अपनी ही कुटिया में सोना, किसी ब्रजवासी के घर मत सोना, चाहे कितनी भी तबियत खराब हो जाए अथवा मरणासन्न ही क्यों न हो जाओ । मैंने देखा है कि इन सब बातों को अन्धे की तरह मानने में ही लाभ रहता है क्योंकि साधु की एक रहनी होती है । वह रहनी जब नष्ट हो जाती है कि आज किसी के घर में जाकर सो गये तो कल कहीं चले गये, कभी किसी के विवाह में चले गये; इस प्रकार की रहनी से सच्ची साधुता का स्वभाव नहीं रह पाता है । इसलिए केवल भक्ति का ही सम्बन्ध रखते हुए वैराग्यमयी रहनी से ब्रजवास करना चाहिए ।

स्वामी श्रीहरिदासजी के शिष्य परम रसिक महापुरुष श्रीविहारिनदेवजी ने साधु-वैष्णव-भक्तों के सन्दर्भ में एक माँझ लिखा है – **"माँगत भीख जनम गयो, गई न भीख की ऊख । प्रेम पदारथ दूर है, बिन सेये रज-रूख ॥"** क्या जरूरत है महल बनाने की ? ब्रज की लताओं में रहो । 'बिन सेये रज रूख' – ब्रज की लतारानी में रहो, वृक्षों में रहो, ब्रजरज का सेवन करो । **'बिन सेये रज-रूख, दुःख सहि लेत घनेरे ।'** जब तुम ऐसी वैराग्य की रहनी से नहीं रहोगे तो तुमको दुःख मिलेगा और मिलता ही है । इस तरह की वैराग्य की रहनी से न रहने पर तुम्हें दूसरों का आश्रय लेना पड़ेगा, दूसरों के जूते चाटना पड़ेगा । **'कहा किये अहंकार, विपति आपति गहि घेरे ।'** ऐश्वर्य से तो 'अहं भाव' उत्पन्न होगा ।

केवल आपत्ति-विपत्ति आयेगी । विहारिनदेवजी ने बिल्कुल सच लिखा है क्योंकि जितने भी ऐश्वर्यशाली लोग हैं, बाहर से देखने में ऐसा लगता है कि ये सुखी हैं किन्तु इनके भीतरी जीवन को देखो तो पता चलेगा कि धन की आसक्ति, उसकी रक्षा की चिन्ता के कारण ये लोग बहुत परेशान रहते हैं । हम लोग आराम से दो रोटी खा रहे हैं, ये लोग ऐसा नहीं कर सकते ।

यत्फलं नास्ति तपसा न योगेन समाधिना । तत्फलं लभते सम्यक्कलौ केशवकीर्तनात् ॥ (श्रीभागवतमाहात्म्य १/७१)

जो लोग ऐसा सोचते हैं कि शास्त्रों में भगवन्नाम की महिमा बढ़ाकर कही गयी है, उन्हें नामापराध लग जाता है । उस नामापराध का यह फल होता है कि हजार बार नाम जप करो, तप करो, उसका कोई फल ही नहीं मिलता है । पद्मपुराण के भागवत माहात्म्य में यह बात कही गयी है कि जो लोग तपस्या करते हैं, योग करते हैं, समाधि लगाते हैं किन्तु फिर भी उनको रसमयी भक्ति की प्राप्ति नहीं हो पाती है । स्पष्ट रूप से यह कह दिया गया है – 'यत्फलं नास्ति तपसा' – कोई कितना भी बड़ा तपस्वी बन जाए किन्तु उसको वह चीज नहीं मिल सकती है, जो भगवान् के कीर्तन से मिलती है । 'यत्फलं नास्ति' – मिल ही नहीं सकती है । शास्त्र में जो कहा गया है, उस पर विश्वास करना चाहिए । शास्त्र के वचनों में विश्वास नहीं है तो भक्ति नहीं मिल सकती है । भागवत के अनुसार योग आदि से उस सर्वोच्च वस्तु 'श्रीभगवत्प्रेम' की प्राप्ति नहीं हो सकती है, जो भगवान् के संकीर्तन से सहज मिल जाएगी । समाधि भी आजकल के लोग लगा लेते हैं, मेरे बचपन में ही प्रयाग में एक साधु ने १८ दिनों तक समाधि लगायी थी किन्तु शास्त्र के अनुसार समाधि से भी सर्वोच्च वस्तु 'विशुद्ध भक्ति' नहीं मिल सकती है । हम तो केवल एक बात जानते हैं और उसी पर राधारानी की दया से अड़ गये हैं कि 'यत्फलं नास्ति तपसा.........' वह परम वस्तु (भावमयी भक्ति) न तो तपस्या से मिलेगी, न योग से, न योग की सिद्धियों और समाधि से मिलेगी । 'तत्फलं लभते सम्यक्क कलौ केशव कीर्तनात्' – जो केवल भगवान् के कीर्तन के प्रति निष्ठावान है, उसको जो चीज मिलेगी, वह तपस्वी, योगी और समाधि लगाने वाले को नहीं मिलेगी । जो समझता है कि नाम की महिमा शास्त्र में बढ़ा-चढ़ाकर कही गयी है, वह नामापराधी है । दस प्रकार के नामापराधों में यह छठा अपराध है । भगवान् के नाम की महिमा शास्त्र में बढ़ाकर नहीं कही गयी है, श्रीभगवन्नाम की महिमा तो स्वयं भगवान् भी वर्णन नहीं कर सकते । नाम-कीर्तन करने वाले को जो सर्वोच्च उपलब्धि होगी, वह अन्य साधनों (जप, तप, योग इत्यादि) से नहीं हो सकती ।

एक बार एक सज्जन मेरे (बाबाश्री के) पास आकर बार-बार यही कहते रहे कि आप ही मेरे गुरु हैं किन्तु मैंने उनसे स्पष्ट कह दिया कि मैं किसी का गुरु नहीं हूँ क्योंकि मुझमें गुरुपन की कोई योग्यता नहीं है । इसलिए नहीं है कि मेरे बारे में कोई सोचे कि इनका कोई गुरु नहीं है । मैंने तो बाबा प्रियाशरणजी महाराज को अपना गुरु बनाया और आज तक मैं उनको अपना गुरु मानता हूँ किन्तु मैं किसी का गुरु नहीं हूँ क्योंकि मुझमें ऐसी योग्यता नहीं है । मैं किसी को अपना शिष्य कैसे मान सकता हूँ ? गुरु किसे कहते हैं ? श्रीमद्भागवत के अनुसार – **तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम् ।**

शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम् ॥ (श्रीभागवतजी ११/३/२१)

एकादश स्कन्ध में ये स्वयं भगवान् के वाक्य हैं कि गुरु की शरण में जाओ । गुरु कौन होता है तो भगवान् कहते हैं – 'शाब्दे परे च निष्णात' – 'शाब्दे' यानि शब्द ब्रह्म अर्थात् उसका शास्त्र ज्ञान परिपूर्ण हो और परे यानि परब्रह्म अर्थात् गुरु को क्रियात्मक होना चाहिए, उसे अनुभव हो गया हो और परब्रह्म में उसकी प्रत्येक वृत्ति शान्त हो गयी हो । अपने स्वाभाविक दैन्यवश श्रीबाबा महाराज कहते हैं कि हमको पता है कि न तो हम शब्द ब्रह्म में निष्णात हैं और न ही परब्रह्म में निष्णात हैं । हमें श्रीजी का अनुभव तो हुआ नहीं है और हम मिथ्या ही किसी से कहें कि मुझे श्रीजी का, ठाकुरजी का दर्शन हो चुका है तो यह अनुचित है । इसी प्रकार परब्रह्म में मेरी वृत्तियाँ शान्त नहीं हुई हैं । इसलिए हम दुनिया में किसी के गुरु नहीं हैं । आजकल प्रायः (अधिकतर) ऐसा देखा जाता है कि गुरुजी जा रहे हैं पूरब और चेला जा रहा है पश्चिम की ओर – **गुर सिष बधिर अंध का लेखा । एक न सुनइ एक नहिं देखा ॥** (श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड - ९९)

गुरुजी तो अंधे हैं, खाई में जा रहे हैं और शिष्य से कहते हैं – 'बेटा ! मेरे पीछे चला आ' किन्तु चेला है बहरा, वह गुरु की बात सुन ही नहीं पा रहा है । यह गोस्वामी तुलसीदासजी ने लिखा है और आज समाज में यही हो रहा है । गुरुजी अंधे हैं का अभिप्राय यह है कि उनको वास्तविक परमार्थ नहीं दिखाई देता है । इसलिए यदि कोई मुझको गुरु भी मानता है तो मेरा तो ब्रज चौरासी कोस की चालीस दिन की यात्रा में सम्पूर्ण भारत से आये ब्रजयात्रियों और चौरासी कोस के ब्रजवासियों के प्रति एक ही मत रहता है – 'भगवन्नाम-संकीर्तन करो ।' जो सच्चा अनुगामी होगा, वह कीर्तन ही करेगा; फिर योग, योग की सिद्धि और तपस्या के चक्कर में क्यों पड़ेगा ? हमारा तो एक ही मत है जैसा कि पद्म पुराणोक्त भागवत-माहात्म्य में कहा गया है – 'यत्फलं नास्ति तपसा.........' तपस्या, योग और समाधि से वह फल नहीं मिलेगा, जो भगवन्नाम-कीर्तन से मिलेगा । भगवन्नाम के गान से भगवान् आधीन हो जाते हैं । हम तो किसी के गुरु हैं नहीं और यदि कोई हमें गुरु मानता है तो उसके लिए सच्चा रास्ता यही है कि दिन-रात 'नाम-कीर्तन' करे । श्रीमद्भागवत में श्रीऋषभदेवजी के प्रसंग में वर्णन है कि भगवान् ऋषभदेव के समक्ष योग की सम्पूर्ण सिद्धियाँ पधारीं । योग की सिद्धियों के स्वयं आगमन पर भी ऋषभजी ने उनको नहीं स्वीकारा, उन्होंने समस्त ऋद्धि-सिद्धियों को ठुकरा दिया । जब भागवत के वक्ता शुकदेवजी ने ऐसा कहा तो राजा परीक्षित ने उनसे प्रश्न किया कि राग-द्वेष दोनों ही बाधक हैं, ऐसी स्थिति में यदि ऋषभदेवजी के समक्ष स्वयं ही समस्त सिद्धियाँ आयीं तो उन्होंने ठुकरा क्यों दिया ? यह तो द्वेष प्रतीत होता है । परीक्षितजी के इस प्रश्न का उत्तर देते हुए श्रीशुकदेवजी ने कहा कि ऋषभ भगवान् ने सिद्धियों को इसलिए ठुकरा दिया क्योंकि मनुष्य को कभी भी अपने मन पर विश्वास नहीं करना चाहिए । श्रीशुकदेवजी ने कहा – **न कुर्यात्कर्हिचित्सख्यं मनसि ह्यनवस्थिते ।**
यद्विश्रम्भाच्चिराच्चीर्णं चस्कन्द तप ऐश्वरम् ॥ (श्रीभागवतजी ५/६/३)

ऋषभजी ने द्वेष के कारण सिद्धियों को नहीं ठुकराया; उन्होंने विचार किया कि ये सिद्धियाँ बाधक हैं, पता नहीं किस समय गिरा देंगी । 'विशुद्ध भक्तिमार्ग' में सिद्धियों का महत्त्व जो समझता है, वह मूर्ख है, चाहे साधु है, चाहे पण्डित है, चाहे कोई भी है । भागवत पढ़ने का फल विशुद्ध प्रेममयी भक्ति ही है । **"नित्यं ददाति कामस्य च्छिद्रं तमनु येऽरयः । योगिनः कृतमैत्रस्य पत्युर्जायेव पुंश्चली ॥"** (श्रीभागवतजी ५/६/४) जैसे पुंश्चली स्त्री अपने पति को मरवा डालती है, उसी प्रकार ऋद्धि-सिद्धियाँ कामादि, प्रतिष्ठा आदि अनर्थों को अवसर देती रहती हैं । इसीलिए ऋषभदेव जी ने सिद्धियों को ठुकरा दिया ।

श्रीगह्वरवन में सिद्ध संत पण्डित हरिश्चन्द्रमहाराजजी रहते थे, वे सच्चे सिद्ध महापुरुष थे । गाँवों में किसी की भैंस खो जाती तो ग्रामीण ब्रजवासी पण्डित जी महाराज की कुटिया के बाहर पूछते कि बाबा ! मेरी भैंस खो गयी है, मिलेगी कि नहीं ? वे कह देते – 'आज से नौवें दिन आ जाएगी ।' उनकी बात सत्य सिद्ध होती थी और सच में नवें दिन भैंस घर वापस आ जाती थी । उन्होंने एक बार स्वयं मुझसे कहा था कि मैंने अपनी समस्त सिद्धियों को इस गह्वरवन के सरोवर गह्वर गंगा (राधा सरोवर) में प्रवाहित कर दिया है । उनको सिद्धियाँ प्राप्त थीं फिर भी उन्होंने उन सिद्धियों को सरोवर के जल में बहा दिया । ऐसे सिद्ध महापुरुषों को मैंने गह्वर वन में देखा है । ऋद्धियाँ-सिद्धियाँ बाधक तत्त्व हैं, इनका महत्त्व रखना, इनका महत्त्व समझना गलत है । इसीलिए इस श्लोक का अर्थ है – यत्फलं नास्ति तपसा – योग से, समाधि से वह फल नहीं मिल सकता, योग की सिद्धियों से उस सर्वोच्च फल की प्राप्ति नहीं हो सकती । तत्फलं लभते सम्यक्क कलौ केशव कीर्तनात् – भगवान् के कीर्तन से जो चीज मिलेगी, वह तपस्या, समाधि, योग और योग की सिद्धियों से नहीं मिलेगी । जो सच्चा शिष्य होता है, वह बिना सिखाये ही सब बातें सीख लेता है और जो केवल नाम मात्र का शिष्य होता है, गुरु दीक्षा के नाम पर वह साधु समाज में होने वाली पंगतों में जाने के लिए प्रमाण पत्र प्राप्त कर लेता है कि हम अमुक गुरु के शिष्य हैं, अमुक सम्प्रदाय से मेरी गुरु परम्परा है । इन सब बातों को कहने के पीछे मेरा अभिप्राय यह है कि हम लोगों को भगवन्नाम-कीर्तन में रति करनी चाहिए । अगर सबमें लगन हो तो अखण्ड कीर्तन साधु-समाज में और गृहस्थों के समाज में भी किया जा सकता है । जब मैं (श्रीबाबामहाराज) ब्रज में आया था तो हम दो व्यक्तियों ने गह्वरवन में

अखण्ड कीर्तन किया था । एक साधु थे, वे मेरे साथ अखण्ड कीर्तन में दिन-रात सहयोग करते थे । जब मैं भिक्षा में जाता अथवा शारीरिक क्रिया करता तो वे साधु कीर्तन करते और जब वे भिक्षा में जाते या शरीर सम्बन्धी कोई क्रिया करते तो मैं कीर्तन करता था ।

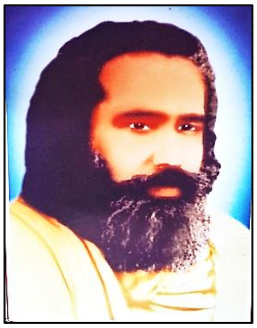

संकीर्तन-आराधक 'श्रीमुकुन्दहरिजी'

प्रस्तावना – श्रीमुकुन्दहरिजीमहाराज बहुत बड़े संकीर्तन-प्रेमी संत हुए हैं, आप भारतवर्ष में जगह-जगह जाकर कीर्तन (पदगान) करवाते हुए उसी में विशेष भक्तिमय व्याख्या करके लोगों को भक्तिरस में सराबोर कर देते थे ।'जहाँ विराजैं राधारानी अलबेली सरकार, कन्हैया ले चल पल्लीपार ।.....' जैसी सुप्रसिद्ध संरचनाएँ आपकी ही लिखित अनेकों पद-कृतियाँ हैं । आपने श्रीचैतन्यमहाप्रभु की गान-पद्धति में 'पदगान' द्वारा समाज को विशेष ब्रजभक्ति की चेतना प्रदान की है ।

जन्मस्थान व जन्मकाल –

श्रीस्वामी मुकुन्दहरिजी का जन्म पंजाब प्रान्त के भटिण्डा जिलान्तर्गत रामामंडी नामक ग्राम में हुआ था । इनका आविर्भाव काल वैशाख मास के शुक्ल पक्षान्तर्गत द्वितीया, संवत् १९७१ मान्य है । आपके जन्म समय पर ही पण्डितों ने आपको एक होनहार बालक बताया था । इनके जन्म नक्षत्र अत्यन्त विलक्षण थे । आपके पिता का नाम पं. श्री प्यारे लाल जी एवं माता का नाम श्रीमती नारायणी देवी था । आपके एकमात्र अग्रज भ्राता (बड़े भाई) श्रीब्रजलालजी हैं । श्रीमुकुन्द हरिजी मार्कण्डेय मुनि के वंशज काण्डलेश गोत्र से सम्बन्धित सारस्वत कुल के उच्च कोटि के ब्राह्मण थे ।

बाल्यकाल – संकीर्तन जगत की इस महान विभूति का बाल्यकाल भी सहज था क्योंकि मोर तो चिते हुए होते हैं, चेते नहीं जाते । यह कथन श्रीस्वामी मुकुन्द हरिजी के सम्बन्ध में भी सत्य दिखाई पड़ा । माँ नारायणी देवी बालक मुकुन्द के बाल चरित्र को देखकर मन ही मन गुनगुनाया करती थीं । बड़े ही प्यार के साथ लोरी गा-गाकर बालक मुकुन्द को सुलाती थीं और उसी ढंग से जगाया करती थीं । केवल सुलाना व जगाना ही नहीं अपितु प्यारे नन्हें को लोरी सुनाते हुए पालने में झुलाया भी करती थीं । संगीत-गायन का शौक आपको बचपन से ही था । आप स्कूल में होने वाले विविध कार्यक्रमों में खूब हिस्सा लेते थे । प्रातःकालीन ईश वन्दना में आप पहले बोला करते थे, फिर बाद में सभी छात्र अनुकरण करते थे । इनका स्वर अत्यन्त प्रखर एवं रसमय था, जिसके आधार पर आपको 'राजेन्द्र कोकिल' नाम से जाना जाता था । राजेन्द्र हाईस्कूल का छात्र होने के कारण प्रथम शब्द एवं सुमधुर स्वरलहरी के कारण 'कोकिल', इस प्रकार आपका उपनाम 'राजेन्द्र कोकिल' पड़ा । आपके माता-पिता धार्मिक प्रवृत्ति वाले थे, जिनका प्रभाव बालक मुकुन्द से भी अछूता न रह सका । बचपन से आप कभी उँगली पकड़कर और कभी गोदी चढ़कर नित्य प्रति अपनी माताजी के साथ अपने निवास के समीप वाले गुरुद्वारा तलवंडी साबौ में जाया करते थे । इनकी इस प्रकार की आदतों को देखकर सभी पड़ोसीजन इन्हें अत्यन्त प्यार करते थे । उनकी इस प्रकार की संस्कार प्रबल भक्ति को देखकर ऐसा प्रतीत होता था जैसे भक्ति मानो उनके जन्म-जन्मान्तरों की धरोहर हो । माँ नारायणी बालक मुकुन्द की छवि का पान करती थीं और मातृत्त्व प्रेम के वशीभूत होकर सोते हुए बच्चे को जगाने के लिए लोरी गाने लगती थीं । पंजाबी भाषा में लोरी अत्यन्त सुमधुर होती है । बालक मुकुन्द को जगाने के लिए उनकी माँ प्रायः ये पंक्तियाँ गाया करती थीं – "उठ वे वीवा किसी भले दा मुख देखिये । तेनू मात यशोदा जगावे ॥" इस प्रकार श्रीमुकुन्द हरिजी का बाल्यकाल अत्यन्त अनूठा था । इनके बाल चरित्र को देखकर ही यह कहा जाने लगा कि यह बालक बड़ा ही उच्च कोटि का महापुरुष साबित होगा और वह मंतव्य सत्य ही निकला । आज समग्र संकीर्तन समाज श्रीमुकुन्दहरिजी के संकीर्तन रस में गोते लगा रहा है ।

प्रारम्भिक शिक्षा – आप बचपन से ही बड़े होनहार एवं प्रतिभाशाली थे । आपको शिक्षा पाने के योग्य समझकर भटिण्डा नगर के राजेन्द्र हाईस्कूल में दाखिल करा दिया गया था । आप बड़े ही हाजिर जवाब थे । अध्यापक महोदय जब भी कोई प्रश्न करते बालक मुकुन्द तुरन्त उसका सही जवाब खोज लेते । यह देखकर अध्यापक हैरान रह जाते । पढ़ाई के साथ-साथ संगीत का भी आपको खूब शौक था । स्कूल की प्रातःकालीन वन्दना आप बड़े ही लयबद्ध ढंग से गाया करते थे । स्कूल में होने वाले अन्य कार्यक्रमों में भी आप हिस्सा लेते थे । आपके गायन की मधुरिमा से प्रभावित होकर सभी आपको राजेन्द्र हाईस्कूल की कोकिल के नाम से पुकारा करते थे । आपने लगभग संवत् १९८७ में मैट्रिक परीक्षा अच्छे अंकों के साथ उत्तीर्ण की । स्कूल में होने वाले खेलों के अन्तर्गत आप कबड्डी में खूब हिस्सा लेते थे । कबड्डी के तो आप विशेष शौक़ीन थे । उच्च शिक्षा का विचार छोड़कर आपने पटवार खाने में नौकरी कर ली । आपकी स्वच्छंद प्रवृत्ति वहाँ भी न रम सकी और कुछ समय नौकरी करने के पश्चात् आपने त्याग पत्र दे दिया और वैराग्य की ओर उन्मुख होने लगे । यदाकदा आप घर से बाहर खेतों में जागीर सिंह नामक जमींदार के खेतों में झोंपड़ी बनाकर इष्ट-आराधना करते थे, अनुष्ठान करते थे । आपको श्रीमद्भागवत, रामचरितमानस एवं वैराग्य शतक आदि ग्रंथों का सम्यक ज्ञान था । ग्रन्थों के अध्ययन-मनन में आपकी विशेष रुचि थी । आपकी वैराग्य-भावना को प्रबलता प्रदान करने में 'वैराग्य शतक' की महत्वपूर्ण भूमिका रही ।

वैराग्य भावना – आप बचपन से ही ईश्वर भजन में लिप्त रहा करते थे । विवाह के लगभग एक साल बाद ही आपको गृहस्थ जीवन से वैराग्य हो गया । आप २०-२१ वर्ष की अल्पायु में ही घर छोड़कर निकल पड़े । यह सब भी प्रभु की कृपा से ही होता है । श्रीहरि की उपासना, अनुष्ठान, संकीर्तन-भजन ही उनके जीवन का पवित्रतम उद्देश्य बन गया । गृह त्याग के पश्चात् आपकी भेंट निर्मल सम्प्रदाय की महान विभूति तपस्वी संत श्री आत्महरि से हो गयी, जो गुफा में रहा करते थे । यही गुफा वाला डेरा आगे चलकर श्रीकृष्ण प्रेम सरोवर के नाम से प्रसिद्ध हुआ । इस होनहार सौभाग्यशाली शिष्य को पाकर परम संत श्रीआत्महरिजी फूले न समाये ।

श्रीसद्गुरुदेव से भेंट और सन्यास वेष का धारण –

संकीर्तन जगत के महान सम्राट श्रीमुकुन्दजी अल्पायु में वैराग्य की भावना से लिप्त होकर घर से निकल पड़े और सद्गुरुदेव की खोज में भटिण्डा की गुफा वाली कुटिया में पहुँचकर गुफा वाले बाबा के शरणापन्न हुए । गुरुदेव तो सब कुछ जानते थे लेकिन फिर भी उन्होंने बालक मुकुन्द को गृह सुख के बारे में समझाया । श्रीआत्महरिजी ने बालक मुकुन्द को उचित पात्र समझकर २१ वर्ष की अवस्था में सत्संग की दिव्यातिदिव्य शक्ति के माध्यम से आध्यात्मिक भावों से ओतप्रोत कर दिया । उसी समय से आपने सन्यास वेष धारण कर लिया, जिसका उन्होंने आजीवन निर्वाह किया । इस प्रकार आप निर्मल सम्प्रदाय में दीक्षित हो गये । गुरु से बोध प्राप्त करके आप सदैव ही हरि स्मरण, कीर्तन, अर्चन एवं वन्दन आदि में ही लगे रहते थे । श्रीगुरुदेव ने मुकुन्द का नाम मुकुन्द हरि रखा । उन्होंने मुकुन्द हरि को सतत हरि स्मरण एवं संकीर्तन करने का उपदेश किया, जिसका आपने अपने जीवन में सहज भाव से सदैव पालन किया । आज उनके संकीर्तन आराधन की कीर्ति चारों ओर देदीप्यमान हो रही है ।

श्रीसद्गुरुदेवजी के प्रति अनन्य निष्ठा – श्रीमुकुन्दहरिजी की निष्ठा महातपस्वी सिद्धपुरुष स्वामी श्रीआत्महरिजी के प्रति प्रगाढ़ होती चली गयी । अनन्तर मुकुन्दहरिजी दिन-रात सद्गुरुदेव की सेवा में रहने लगे । नित्यप्रति आप भिक्षाटन के लिए भटिण्डा नगर जाया करते थे । गर्मी हो या सर्दी अथवा बरसात, हमेशा आप भिक्षा वृत्ति के लिए नंगे पैर ही जाया करते थे । नगर से लौटने के पश्चात् आप पहले श्री सद्गुरुदेव जी को प्रसाद (भोजन) पवाने के बाद बचे-खुचे जूठन प्रसाद को स्वयं ग्रहण करते थे ।

एक बार की बात है कि मुकुन्द हरि जी भटिंडा नगर में भिक्षा के लिए एक मैया के घर गये । उस मैया ने भिक्षा देने से इनकार कर दिया । आपने दूसरे दिन फिर उसी मैया के घर जाकर नारायण हरि किया, फिर भी मैया ने मना कर

दिया । क्रमशः प्रतिदिन जाते रहे, परन्तु मैया को तनिक भी दया नहीं आई और वह प्रतिदिन मना करती रही । केवल इतना ही नहीं, वह मैया उनका खूब अपमान करती, फटकार लगाती लेकिन गुरुजी की आज्ञानुसार मुकुन्द हरि जी वहीं जाते । अंत में सातवें दिन उसी मैया ने श्रीमुकुन्द हरि जी को अन्दर बुलाते हुए कहा – 'बाबा ! भिक्षा ले जाओ ।' इस पर मुकुंद हरिजी ने कहा – 'बस मैया ! यही तुम्हारी भिक्षा है । मुझको तुमसे यही कहलवाना था ।' श्रीमुकुन्द हरि जी को भी श्रीसद्गुरुदेव जी के वचनों के प्रति आस्था बढ़ती चली गयी । कहा जाता है कि आप एक बार भटिण्डा नगर के किसी घर में मधुकरी (भिक्षा) लेने के लिए गये तो उस घर की मैया ने शीघ्रता से अपने बीमार पड्डे (भैंस का बच्चा) के ऊपर से रोटी को घुमाकर देना चाहा लेकिन मुकुन्द हरि यह सब कुछ समझ गये और उसी क्षण बिना भिक्षा लिए ही श्रीसद्गुरुदेव के पास आकर सब वृत्तान्त कहा और भिक्षा न लाने के लिए क्षमा माँगी । उस दिन के पश्चात् श्रीमुकुन्द हरिजी को श्रीगुरुदेव ने कभी भिक्षा के लिए नहीं भेजा ।

गुरुदेव से सन्यास ग्रहण करने के पश्चात् जब श्रीमुकुन्दहरिजी हरिद्वार में पण्डित घासीरामजी से संस्कृत का अध्ययन कर रहे थे तो उन्हें अपने सद्गुरुदेवजी की बीमारी का समाचार मिला । समाचार मिलते ही आप अध्ययन छोड़कर गुरुदेव की सेवा में चले गये । उनकी अधिक अस्वस्थता के कारण श्रीमुकुन्दहरि जी कई दिन-रात तक सो नहीं पाते थे । उन्होंने तो गुरु सेवा को ही अपना अभीष्ट मान लिया था । अन्य भी अनेक ऐसी चर्चाएँ मिलती हैं, जिससे आपकी गुरुनिष्ठा का पता चलता है ।

कहा जाता है कि श्रीसद्गुरुदेव जब अधिक अस्वस्थ रहने लगे तो चौबीस घंटे में अनेक बार शौच की शिकायत होती थी, जिसे मुकुन्द हरि जी स्वयं अपने हाथ से साफ़ किया करते थे । यह सब करने में उन्हें किंचित् भी दुःख महसूस नहीं होता अपितु और अधिक आनन्दित होते थे । उनका कहना था कि जो फल महापुरुषों, पूर्वजों की सेवा से प्राप्त होता है, वह दान करने से भी नहीं मिल सकता । उन्हीं दिनों श्रीसद्गुरुदेवजी ने श्रीमुकुन्दहरिजी को गुफा वाली कुटिया का उत्तराधिकारी बनाते हुए सात दिन पूर्व ही अपने शरीर त्याग के सम्बन्ध में कह दिया था । गुरुजी की आज्ञा शिरोधार्य करके श्रीमुकुन्दहरिजी ने तदनुसार सब कुछ किया ।

<u>श्रीसद्गुरुदेवदेवजी का निर्वाण</u> –

गुरुजी को अपने अंतिम समय का आभास हो गया था । उन्होंने इस बारे में मुकुन्द हरि जी को सब कुछ बता दिया था । कहते हैं कि श्रीगुरुदेव ने अपने कथनानुसार ठीक सातवें दिन तख़्त पर लेटे ही लेटे अपने शिष्य से कहा – 'मुकुन्द ! गुफा में से कालिय मर्दन का चित्र ले आओ ।' मुकुन्द हरि जी भागे-भागे अन्दर गये और चित्र लाकर श्रीसद्गुरुदेव जी को दे दिया, जिसे देखते ही देखते उन्होंने अपने शरीर का त्याग कर दिया और इस प्रकार एक महान विभूति सदा-सदा के लिए हमारी आँखों से ओझल हो गयी ।

श्रीसद्गुरुदेवजी के निर्वाण पद प्राप्ति से सभी कुटिया निवासी विरहकातर हो उठे, मुकुन्दहरिजी पर तो मानो पहाड़ ही टूट पड़ा । दिन-रात श्रीगुरुदेव जी की स्मृति में खोये-खोये रहने लगे । उनकी विरह ज्वाला को उनके गीतों, भजनों एवं संकीर्तनों में सम्यक् रूप से देखा जा सकता है । आपने धैर्य धारण कर श्रीगुरुदेव की आज्ञानुसार उनकी समाधि बनवाई । श्रीमुकुन्दहरिजी पर अपने गुरुदेव की आभा ने एक इस प्रकार का तेज छोड़ा, जो आजीवन अजस्त्र धारा के समान प्रखर होता चला गया । गुरु की कृपा सर्वोपरि सर्वत्र फलदायक होती है ।

<u>स्वामी श्रीमुकुन्दहरिजी ब्रज-वृन्दावन की ओर</u> –

प्रमाणों के अनुसार आप सबसे पहले आज से लगभग पचास-बावन वर्ष पूर्व वि. संवत् १९९२ में प्रथम बार ब्रज-वृन्दावन में आये । उस वर्ष हरिद्वार में कुम्भ का मेला लगा था । आप वृन्दावन में श्रीपरमहंस आश्रम, अटल्ला चुंगी के पास ठहरे । वहाँ पर आपने कमरे में ठहरने के लिए इनकार कर दिया और नीम के वृक्ष तले अपना आसन जमा लिया; उस समय वीतरागी स्वामी श्रीस्वतन्त्रानन्दजी भी महाराजश्री के साथ वृन्दावन पधारे थे । आपकी प्रथम यात्रा श्रीवृन्दावन

बिहारी के प्रति गहन अभिरुचि प्रदान करने वाली थी । तदनन्तर महाराजश्री का वृन्दावन आवागमन निरन्तर चलता रहा । परम पूज्य महाराजश्री गीताप्रेस गोरखपुर से प्रकाशित मासिक 'कल्याण' पत्रिका बराबर मँगाते रहते थे । इसका आप गहनता से अध्ययन करते थे । व्रज के प्रसिद्ध गौड़ीय सम्प्रदाय के ग्रंथों में आपकी रुचि थी । 'श्रीकृष्णचैतन्य चरितामृत' एवं संत श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी जी कृत 'चैतन्य चरितावली' का आपको विशेष ज्ञान था । बाबा गोपालदास जी कहते हैं कि उनसे बाबा श्रीवियोगी जयरामदेवजी महाराज कहा करते थे कि श्रीहरि जी लगभग ४५ वर्ष पूर्व शुक्ल पक्ष एवं कृष्ण पक्ष की रात्रियों में संकीर्तन करते हुए श्रीधाम वृन्दावन की परिक्रमा किया करते थे । श्रीस्वामी हरिदास संगीत कला निकेतन सेवा कुञ्ज के संगीत विशारद श्री नत्थी सिंह जी का कहना है कि उनको हारमोनियम बजाने का पुराना सहज संस्कार था क्योंकि इतना अद्भुत वादन प्रयास करने पर भी दुर्लभ है । गाय और ब्राह्मण सेवा में आपकी विशेष निष्ठा थी । जब स्वामीजी वृन्दावन में श्रोत मुनि निवास में आकर ठहरते थे तो गो सेवा के लिए श्रीरंग मंदिर के पास श्रीधर पाठशाला पहुँचते थे । महाराज श्रीवृन्दावन आते ही सर्वप्रथम यमुना पुलिन जाया करते थे, दण्डवत करते, आचमन करते एवं उसकी लहरों की छवि को निहारा करते थे । गोपीभाव में रसमग्न होकर गाने लगते – **"मैं तो कब से लगाये बैठी आस री । हाय बाजी न मनहर की बाँसुरी ॥ कैसा यमुना का तट प्यारा, प्यारा बहे रस की धारा । नाचती चन्द्रिका तारा-तारा, खिला रूप न्यारा ॥ काहे अब तक रचाई न रास री । हाय बाजी न मनहर की बाँसुरी । मैं तो कब से लगाये बैठी आस री ॥"** आप यमुनाजी के इतने रसिक थे कि गोपी भावना से श्रीवृन्दावन यमुना पुलिन पर ही रहते थे । महारास की भावना से विभोर होकर गा उठते थे –

"कालिंदी तट नटवर नागर मधुर मुकुट अलकन की लटकन । मधुर पीत तट फहरन झुकि-झुकि कजरारी अँखियन की मटकन ॥ सप्त सुरन में अधर सुधाभर मधुवन मधुवन लाग्यो बरसन । मधुर गोपिका तरुन रसीली मधुर-मधुर माधवराधा तन ॥ मधुर मृदंग बजत मदमाती धाकिट त्रिकिट त्रिकट तन । तत् थेई तत् थेई ता थेई मधुर मधुर धिरकन पग पटकन ॥ मधुर धार निकसी पायल सों झनक-झनक झन झननन झननन । तन मन प्राण करत न्यौछावर शंकर अज शुक निरख 'हरि' तन ॥"

परम पूज्य महाराज श्रीमुकुन्द हरि जी की श्रीधाम वृन्दावन के प्रति तो निष्ठा थी ही, इसके अतिरिक्त वृन्दावन की विभूतियों एवं उनकी रचनाओं से विशेष लगाव था । वे अपने गायन में स्वामी श्रीहरिदासजी के विशेष कृपापात्र बैजू बावरा का चरित्र गायन के साथ अपनी भावना को प्रकट करते थे । स्वामी मुकुन्दहरिजी के गीत की झलक तन-मन को पुलकित कर देती है, यथा – "हो हो मेरा साँवरा । आज तोहे पुकारे इक बावरा ।" आप सदैव वृन्दावन गमन पर सर्वप्रथम यमुना स्नान के लिए जाया करते थे । उसकी अनुपम छवि को निहारते थे । आप मंदिर में जाकर श्रीबिहारी जी के सम्मुख पद सुनाया करते थे, जिसे सुनकर दर्शनार्थी देखते ही रह जाते थे । कालान्तर में आपने श्रीधाम में संत-महात्माओं के विशेष आग्रह पर श्रीबांकेबिहारी कालोनी के अन्तर्गत श्रीहरि निकुंज आश्रम की स्थापना की । जिसमें नित्यप्रति संकीर्तन, हरि कथा, प्रवचन एवं रास लीला का आयोजन आज भी चलता रहता है । इस आश्रम से 'ईश्वर प्राप्ति' नामक पत्रिका का प्रकाशन भी होता है, जिसके आजीवन संरक्षक महाराज श्रीमुकुन्द हरिजी ही हैं । इसके अलावा आश्रम में संतों को नित्यप्रति भोजन भी दिया जाता है । गौ सेवा का विशेष अभियान चलता रहता है ।

स्वामीजी के जीवन की घटनाएँ – एक प्रत्यक्ष घटना है कि एक बार स्वामीजी का एक भक्त बस द्वारा वृन्दावन से बरसाना जा रहा था । उस समय लठामार होली का उत्सव था । उसी बस में एक सरदारजी संकीर्तन करते हुए सफर कर रहे थे । यह देखकर भक्त आश्चर्यचकित हो गया । संकीर्तन समापन पर उसने सरदारजी से पूछा – 'सरदार जी ! आप कहाँ से आ रहे हैं ?' सरदारजी ने भक्त की ओर देखते हुए बताया कि मैं पंजाब से आ रहा हूँ । युगपुरुष स्वामी मुकुन्द हरिजी की कृपा से पहली बार ब्रज-बरसाने की होली देखूँगा । मेरे बड़े ही अहोभाग्य हैं । सरदारजी से महाराजश्री का नाम सुनकर भक्त की और अधिक जानकारी लेने की जिज्ञासा बढ़ी । उसने कहा – 'सरदारजी ! कृपापूर्वक आप

महाराजजी के सम्बन्ध में वर्णन करो ।' सरदार जी बोले – देखो भाई ! मैं पंजाब प्रान्त के एक गाँव का रहने वाला हूँ । मैंने ब्रज-वृन्दावन का नाम सुन रखा था । मेरे मन में बड़ी ही व्याकुलता बनी रहती थी कि कब ऐसा समय आएगा कि मैं ब्रजभूमि के दर्शन करूँगा । मैंने सुना है कि ब्रज की होली संसार में प्रसिद्ध है । इसी चिंता में खोया हुआ रात के समय मैं अपने घर में सो रहा था कि अचानक सोते-सोते मुझे एक मधुर ध्वनि सुनाई पड़ी – 'भाईजी ! आप पश्चिम में भटिण्डा जाओ । वहाँ श्रीकृष्ण सरोवर कुटिया (नगर से बाहर की तरफ) है, जिसमें वहाँ के जगत्प्राण स्वामी मुकुन्द हरि जी रहते हैं, वही आपको ब्रज-बरसाने का रास्ता बतायेंगे । उनके कृपाप्रसाद से आपकी कामना पूर्ण होगी ।' प्रातः काल जागते ही मैं भटिण्डा के लिए चल दिया । श्रीकृष्ण प्रेम सरोवर पहुँचकर स्वामीजी के दर्शन किये एवं रात्रि की सारी घटना उन्हें सुनाई । महाराजश्री ने इस घटना का अनुमोदन करते हुए बताया कि मुझे भी ऐसा ही संकेत हुआ है । तुम बरसाने की होली जरूर देख आओ, उसका किराया भी हमारी तरफ से लेते जाओ । उनकी कृपा से आज मैं होली दर्शन का अधिकारी बना हूँ । आज से मेरी उनके श्रीचरणों में अपार श्रद्धा हो गयी है । उनके द्वारा बताये गये संकीर्तन-प्रसाद का मैं आनन्द ले रहा हूँ, अब तो वे ही मेरे सर्वस्व हैं । इस प्रकार उन सरदार जी की भावपूर्ण वार्ता को सुनकर उस भक्त का सारा शरीर रोमांचित हो उठा कि महापुरुषों में कितना तेज होता है कि वह कहीं न कहीं से प्रकाशमान हो उठता है ।

एक बार महाराज मुकुन्द हरि बरसाना होली देखने के लिए पधारे । भक्त परिकर भी उनके साथ था । आप रंगीली गली में रंगीली होली के दर्शन कर रहे थे । नंदगाँव के ग्वालों पर बरसाने की गुजरियाँ तड़ातड़ लट्ठ बरसा रही थीं । सभी रसमय होकर इस होली का दर्शन कर रहे थे । इसी बीच बरसाने की एक गोपी के रूप में स्वामीजी को क्षण भर के लिए किशोरीजी के दिव्य स्वरूप के दर्शन हुए और तत्काल ही वह रूप अन्तर्धान हो गया । स्वामीजी उसमें खो गये ।काफी देर बाद होश आया, लठामार होली का समापन हो गया लेकिन स्वामीजी तो बेचैन हो रहे थे । फिर से स्वामिनी जी के चरण कमलों की दर्शन अभिलाषा से रंगीली गली के घर-घर में गये । सभी ब्रजदेवियों के चरण स्पर्श करते हुए उनसे लट्ठ भी खाते गये, सबको चार-चार लड्डू देने के साथ-साथ ही अपना अहोभाग्य भी मानते गये ।

कहा जाता है कि एक बार स्वामी मुकुन्द हरिजी वृन्दावन में श्रीनिधिवन (स्वामी हरिदासजी की आराधना स्थली) में दर्शनार्थ पधारे । आपके साथ भटिण्डा नगर के अलावा अन्य नगरों के भक्तजन भी थे । अपने भक्त समुदाय के साथ स्वामी हरिदासजी के लाड़ले श्रीबाँकेबिहारीजी के प्राकट्य स्थल में संकीर्तन प्रारम्भ किया । उस समय भीषण गर्मी पड़ रही थी । महाराजश्री के संकीर्तन की ध्वनि, युगल शतक के रचयिता श्रीभट्टदेवाचार्यजी के निम्न पद पर आधारित थी – "**भीजत कब देखौं इन नैना । श्यामाजू की सुरंग चूनरी, मोहन को उपरैना ॥**

श्यामाश्याम कुञ्ज तर ठाड़े जतन कियौ कछु मैं ना । उमड़ी घटा चहुँ दिशि 'श्रीभट्ट' घिर आई जल सैंना ॥"

संकीर्तन की इस ध्वनि की गूँज के प्रभाव से थोड़ी ही देर में नन्हीं-नन्हीं बूँदें झरने लगीं और धीरे-धीरे वर्षा होने लगी । काफी दिनों के बाद यह वर्षा हुई थी । उपस्थित जनसमूह श्रीश्यामाश्याम की जय, श्रीमुकुन्द हरि जी की जय-जयकार कर उठा । मुकुन्द हरि जी का उस समय का यह संकीर्तन अविस्मरणीय रहेगा ।

संसार से सावधान

९ मई, २०१५ (श्रीबाबा महाराज द्वारा रचित पद की व्याख्या से)

"काँटों को फूल जानकर न प्यार कीजिये ।" संसार के सभी सम्बन्ध, सभी विषय काँटे हैं लेकिन उनसे ही हर मनुष्य प्यार करता है । मनुष्य सोचता है कि यह मेरा कुटुम्ब है, स्त्री है, पुत्र है । इसलिए सदा उससे प्यार करता है । वहाँ से छोड़कर भी अगर कोई आदमी आये तो विषयों से प्यार करता है जबकि विषय भगवान् से अलग कर देंगे । संसार में कहीं भी ममता है तो तो वह ममता भी भगवान् से अलग कर देती है । "फट जाएगा दिल आपका आँचल बचाइए ।" ममता से अन्तःकरण रूपी कपड़ा फट जाता है । उस कपड़े के फटने से जीव की अधोगति होती है । जहाँ

आसक्ति है, मरने के बाद वहीं जन्म लेना पड़ेगा । जड़भरत जी सिद्ध महापुरुष थे, उनकी एक हिरन के बच्चे में आसक्ति हो गयी तो शरीर छोड़ने के बाद वे हिरन बने । मनुष्य बच्चों को गोद में खिलाता है, स्त्री से प्रेम करता है । **"चेहरा जो देखा आपने खिलता हुआ गुलाब"** गुलाब का सुन्दर फूल देखकर मनुष्य उसको लेने के लिए दौड़ जाता है लेकिन उस गुलाब के पेड़ में ऊपर से नीचे तक काँटे ही काँटे थे । **"धड़ पेट हाथ पाँव, काँटों के हैं देखिये ।"** आपको दिखाई नहीं देता, आसक्ति में आप अंधे हैं । सारा पेड़ काँटे का था । जिस स्त्री के शरीर में सौन्दर्य की कल्पना करते हो, उसका शरीर बारह प्रकार के मलों से भरा हुआ है । ये मल ही काँटे हैं जो तुम्हें दिखाई नहीं देते और तुम केवल बाहरी सुन्दरता को देखकर मरने लगते हो । **"इंसान बनके आता है, दुनिया में जो कोई, रोना ही पड़ता पहले पहले ये भी सीखिये ।"**

इस संसार में कोई बच्चा पैदा होता है तो पहले रोता है और जब संसार से वह जाता है तो लोग रोते हैं । दुःख से संसार शुरू होता है और दुःख में ही समाप्त होता है, फिर भी मनुष्य इस दुखमय संसार में सुख चाहता है । दुःख से संसार शुरू हुआ और दुःख से ही इसका अंत होगा । **'सर्वं दुखमयं जगत्'** – संसार में सब ओर दुःख ही दुःख है, फिर भी मनुष्य सुख चाहता है, विष को अमृत बनाना चाहता है । जबकि प्रकृति शिक्षा देती है – **"जाता है दुनिया से कोई तो फिर सभी रोते"** रोने से संसार का प्रारम्भ हुआ और रोने से ही इसका अन्त हुआ । **"हँसना ही यहाँ धोखा यह जान लीजिये ।"** हँसने के लिए मनुष्य धन इकट्ठा करता है, परिवार बनाता है और इस धोखे में ही सारा जीवन चला जाता है और धोखे में ही सारा जीवन चला गया किन्तु यह धोखा नहीं छूटता है, जन्म-जन्म तक नहीं छूटता है । सारा संसार धोखा है, मिथ्या है, दुःखमय और असत्य है किन्तु आज तक हम लोग इससे छूट नहीं पाये और न छूटेंगे क्योंकि छुडाने वाला भगवान् ही है और हम लोग उससे दूर हैं । हर जन्म में दूर जा रहे हैं, हर घंटे में, हर मिनट में दूर जा रहे हैं । कहाँ जा रहे हैं ? मृत्यु की ओर जा रहे हैं । भगवान् ने गीता में कहा –

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परन्तप । अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥ (श्रीगीताजी ९/३)

हे अर्जुन ! इस धर्म (भागवत धर्म या भक्ति) में अश्रद्धा करने वाले मेरी प्राप्ति न होने से मृत्यु के रास्ते में चले जाते हैं । प्रश्न हुआ कि मनुष्य संसार में फँसाने वाली आसक्ति को नहीं छोड़ सकेगा तो इसी प्रकार बार-बार जन्म-मृत्यु के अत्यधिक कष्टमय मार्ग में ही पड़ता रहेगा और आसक्ति को छोड़ना उसकी सामर्थ्य से परे है । आसक्ति से बेचारा मनुष्य कैसे छूटे तो इसका उपाय श्रीमद्भागवत में बताया गया है –

यः कर्णनाडीं पुरुषस्य यातो भवप्रदां गेहरतिं छिनत्ति । (श्रीभागवतजी ३/५/११)

ये आसक्तियाँ भगवान् ही काटेंगे । आसक्ति की डोर ऐसी नहीं है जो दिखाई पड़े । जो डोर दिखाई पड़ती है, वह तो छुरा या कैंची से काटी जा सकती है । आसक्ति दिखाई नहीं देती है । यह कैसे नष्ट होगी ? जब हम सत्संग में कथा या भगवान् का गुणगान सुनेंगे तो कानों में भगवान् घुसेंगे । जब कानों में भगवान् प्रवेश करेंगे, भगवान् की भक्ति प्रवेश करेगी, भगवान् का नाम प्रवेश करेगा; तब भगवान् ही आसक्ति को काटेंगे, जो दिखाई नहीं देती है । प्रभु कृपा करके सब आसक्तियों को लूट लेते हैं । अन्धा आँख प्राप्ति को प्रभु की कृपा समझता है, गरीब धन प्राप्ति को प्रभु की कृपा समझता है, रोगी निरोग होने को प्रभु की कृपा समझता है; किन्तु ये सब धोखा है, ये सब प्रभु की कृपा नहीं है, प्रभु जिस पर कृपा करते हैं उसे अपनी शरण में ले लेते हैं और उस जीव की सब आसक्तियों को लूट लेते हैं, तब जीव एकमात्र प्रभु का आश्रय लेता है । यही प्रभु की सच्ची कृपा है । भगवान् की कृपा और माया की कृपा; जीव पर ये दो कृपा होती रहती हैं । इन दोनों कृपाओं में बहुत अन्तर है । माया जब खुश होकर कृपा करती है तो धन-दौलत, मान-सम्मान दे देती है । माया की कृपा से 'मैं-मेरा' के भाव जागृत हो जाते हैं । भगवान् ने ध्रुव जी से कहा – **"सत्याऽऽशिषो हि.....अनुग्रहकातरोऽस्मान् ॥"** (श्रीभागवतजी ४/९/१७) जब प्रभु कृपा करते हैं तो धन आदि देने से पहले 'मैं-मेरा' की वृत्ति हटा देते हैं । प्रभु ने सुदामाजी को धन तो दिया परन्तु देने से पहले उनमें 'मेरा-तेरा' की भावना बिल्कुल खत्म कर दी । भगवान् अपने भक्त का सदा भला चाहते हैं । नारदजी ने भगवान् को नारी-विरह का श्राप दिया परन्तु भगवान् ने नारदजी का कल्याण ही किया, उन पर रुष्ट नहीं हुए । भगवान् तीन तरह से कृपा करते हैं । एक कृपा साक्षात् दर्शन देकर करते हैं, दूसरी कृपा मन से मंगल

चाहकर करते हैं, जैसे कि अनेक निमित्त बना देना, बिना किसी प्रयत्न के कार्य बना देना और तीसरी कृपा संस्पर्श से करते हैं। जैसे मछली अण्डे को दूर से देखती है और उसका पालन करती है। कछुआ दूर से ही अपने अण्डे का चिंतन करता है, इसी से अण्डे का पालन होता है और वह बढ़ता है। सूर्य कभी नहीं पूछता कि अन्धकार कितना पुराना है? अन्धकार आज का है या वर्षों पुराना है। सूर्य की किरणें तो अन्धकार के पास पहुँचते ही उसे मिटा देती हैं। ऐसे ही प्रभु की कृपा कभी यह नहीं पूछती कि सामने वाला कितना बड़ा पापी है? प्रभु की कृपा होते ही जीव के समस्त पाप व कष्ट मिट जाते हैं। अगर प्रभु की करुणा पाना चाहते हो तो अपनी 'अहंता' को निकाल दो। प्रभु को यदि पाना है तो सब आसक्तियों को छोड़ दो। भक्तिरसामृतसिंधु में आता है कि कामना ही राक्षसी है, ये जानता हुआ भक्त भगवान् की भक्ति के अलावा और कोई भी कामना नहीं करता। प्रभु को यदि पाना है तो सब आसक्तियों व कामनाओं को छोड़ दो, प्रभु शीघ्र मिल जायेंगे। जिसे एक गिलास पानी की भी आवश्यकता न हो और न ही किसी से बात करने या बोलने की अपेक्षा हो, वह भक्त शान्त और निर्भय हो जाता है। जैसे वर्षा पड़ने पर घास स्वतः उत्पन्न हो जाती है, उसी तरह आसक्तियों व कामनाओं को छोड़ने पर चारों ओर फिर प्रभु ही दिखाई देंगे। बिना आसक्ति छोड़े भगवद्भजन नहीं होता।

आसक्ति की रस्सी दिखाई नहीं देती है परन्तु वह इतनी लम्बी होती है कि उसकी कोई सीमा नहीं है। आप अमेरिका में बैठे हैं और आसक्ति की रस्सी वहीं से बाँधकर आपको ले आयेगी। साधक को अपनी वृत्तियों को बचाकर रखना चाहिए। यदि वृत्तियाँ बँट गयीं तो साधक लुट जायेगा। वृत्तियों के बँटने के बाद कुछ भी जप, तप व पाठ आदि करते रहो कुछ नहीं मिलने वाला। अपनी वृत्तियों को सब जगह से हटाकर एक श्रीकृष्ण में लगा दो। जब तक कहीं भी आसक्ति है, चाहे थोड़ी ही क्यों न हो, तब तक वहाँ श्रीकृष्ण प्रेम नहीं होता है। प्रेम की उत्पत्ति तब ही होती है, जब जीव सब आसक्तियों को छोड़ देता है। इसलिए गोपियों ने श्रीकृष्ण से कहा था कि हम सब कुछ छोड़कर तुम्हारे पास आयीं हैं। अपनी सब आसक्तियों को छोड़कर आयीं हैं। क्यों छोड़कर आयीं हैं ? तुम्हारी उपासना की आशा से।
"मैवं विभोऽर्हति.....आदिपुरुषो भजते मुमुक्षून् ॥" (श्रीभागवतजी १०/२९/३१) श्रीदेवहूतिजी ने कहा है – **"संगो य: संसृतेर्हेतुः .... निःसंगत्वाय कल्पते ॥"** (श्रीभागवतजी ३/२३/५५) आसक्ति बहुत खराब चीज है परन्तु आसक्ति से अच्छी वस्तु भी कोई नहीं। यदि आसक्ति महापुरुषों में हो जाय तो निश्चित कल्याण हो जाता है। अगर आसक्ति संसार से नहीं छूटती है तो इसको सच्चे संत-महापुरुषों से बाँध दो, तुम्हारा अवश्य कल्याण हो जाएगा।

सर्वोच्च साधन 'रसीली भक्ति'

<u>बाबाश्री के सत्संग '२४ जनवरी, २०१६' से संकलित</u>

भगवान् में प्रेम ही जिसका लक्ष्य है, वही श्रेष्ठ है। श्रीभगवत्प्रेमी भावुक भक्त ही भक्तिमार्ग में श्रेष्ठतम माना गया है। गोस्वामीजी ने रामायण में कहा है – **सो सुखु करमु धरमु जरि जाऊ।**
जहँ न राम पद पंकज भाऊ ॥ (श्रीरामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड - २९१)

वह धर्म और कर्म जल जाए, जिसका लक्ष्य भगवान् के चरणकमलों के प्रति प्रेम नहीं है। श्रीगीताजी में भी भगवान् ने कहा है – **तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।**
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥ (श्रीगीताजी ६/४६)

तपस्या करना भी एक योग है। योगी तपस्वियों से भी श्रेष्ठ है। ज्ञान की भी लोग बहुत प्रशंसा करते हैं, ज्ञान से मुक्ति होती है किन्तु भगवान् कहते हैं कि ज्ञानियों से भी ज्यादा बड़ा है 'योगी'। श्रुति और स्मृति द्वारा प्रतिपादित अनेक

कर्म हैं, संसार के अनेक कर्म हैं । श्रुति-स्मृति के अनुसार कर्म करने वाले से भी बड़ा है 'योगी' । इसलिए हे अर्जुन ! तुम योगी बनो । इसके अगले श्लोक में भगवान् ने कहा है –

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना । श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥ (श्रीगीताजी ६/४७)

जितने भी तरह के योगी हैं, उनमें सबसे बड़ा वह है जो मुझमें मन लगाकर श्रद्धा के साथ मेरा भजन करता है । वह योगी मुझे परम श्रेष्ठ मान्य है अर्थात् मेरी दृष्टि में वही सर्वश्रेष्ठ योगी है ।

इसी प्रकार श्रीमद्भागवत में प्रह्लादजी ने कहा है – **नालं द्विजत्वं देवत्वमृषित्वं वासुरात्मजाः ।**

प्रीणनाय मुकुन्दस्य न वृत्तं न बहुज्ञता ॥ (श्रीभागवतजी ७/७/५१)

ब्राह्मण बनना ही 'अलं' अर्थात् पर्याप्त नहीं है । ब्राह्मण उसे कहते हैं, जो वेद का अध्ययन करके ब्रह्म को जान गया । देवता बनना भी बहुत बढ़िया बात नहीं है । ऋषि-महर्षि बनना भी बड़ी बात नहीं है । प्रह्लादजी असुर बालकों से कहते हैं कि तुम लोग असुरों के पुत्र हो तो ये मत सोचो कि भगवान् देवताओं का पक्ष लेंगे, ब्राह्मणों का पक्ष लेंगे । भगवान् को प्रसन्न करने के लिए – 'न वृत्तं' – वृत्त का अर्थ है 'सदाचरण', न बहुज्ञता – बहुत अधिक जानना भी आवश्यक नहीं है । कोई १८ पुराणों का पण्डित बन गया, छः शास्त्रों का, षड् दर्शन का ज्ञाता बन गया, लेकिन भक्ति जरूरी है ।

न दानं न तपो नेज्या न शौचं न व्रतानि च । प्रीयतेऽमलया भक्त्या हरिरन्यद् विडम्बनम् ॥ (श्रीभागवतजी ७/७/५२)

श्रीप्रह्लादजी कहते हैं – दान की आवश्यकता नहीं है, तप की आवश्यकता नहीं है, यज्ञ की जरूरत नहीं है, शौच (पवित्रता) जरूरी नहीं है; ये सब भक्ति (श्रीइष्ट-प्रेम) के बिना केवल ढोंग (दिखावा) बन जाते हैं ।

ब्रजवासियों को श्रीकृष्ण की प्राप्ति कैसे हो गयी, जबकि वे तो गृहस्थ थे; लेकिन उनमें सच्चा त्याग व समर्पण था । इसलिए हमारे सनातन धर्म के भक्तिमय शास्त्रों में किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं किया गया है । भागवत धर्म के अनुसार जितने भी शास्त्रोक्त साधन हैं, यदि उनके अनुसार चलने से भगवत्प्रेम की प्राप्ति नहीं होती तो वे व्यर्थ ही हैं ।

सर्वेवेदाश्च यज्ञाश्च तपो दानानि चानघ । जीवाभयप्रदानस्य न कुर्वीरन् कलामपि ॥ (श्रीभागवतजी ३/७/४१)

किसी भी तरह प्राणी भगवान् की ओर चले, चाहे अपनी इज्जत चली जाए, अपनी मान-प्रतिष्ठा चली जाए । इसीलिए श्रीमद्भागवत के अनुसार जिसने किसी प्राणी को भगवान् की ओर लगा दिया, उसने सारे वेद पढ़ लिए, सभी यज्ञ कर लिए, समस्त दान कर लिए । जिसने जीवों को अभयदान का मार्ग बता दिया अर्थात् समस्त भयों से मुक्ति का मार्ग यानि भगवत्प्राप्ति का रास्ता बता दिया, उससे बड़ा कोई नहीं है ।

सिनेमा जगत् की गायिकायें दुनिया में बहुत प्रसिद्ध हो जाती हैं, उनके द्वारा संगीत में विश्व कीर्तिमान स्थापित कर लिया जाता है लेकिन निष्काम भक्ति नहीं कर पाती हैं । भावुक भक्त वही है, जो भगवान् के लिए त्याग करता है । भगवान् के लिए, भगवत्प्रेम के लिए संसार के समस्त विषयों का त्याग करने वाला दुनिया में सबसे बड़ा है, विश्व में वह सबसे अधिक शुद्ध है । श्रीप्रह्लादजी ने भागवत में कहा है कि बारह गुणों से युक्त कोई ब्राह्मण भी यदि भक्तिविहीन है तो उससे एक भक्त चाण्डाल श्रेष्ठ है – **"विप्राद् द्विषड्गुणयुतादरविन्दनाभपादारविन्दविमुखाच्छ्वपचं वरिष्ठम् ।**

मन्ये तदर्पितमनोवचनेहितार्थप्राणं पुनाति स कुलं न तु भूरिमानः ॥" (श्रीभागवतजी ७/९/१०)

चाण्डाल बड़ा है लेकिन क्यों बड़ा है, इसलिए बड़ा है क्योंकि उसने अपने मन, वाणी, चेष्टायें, धन और प्राण भगवान् को समर्पित कर दिए हैं । इतने से ही वह स्वयं तो भक्त बना ही और साथ ही उसने अपने परिवार को, अपनी अगली-पिछली पीढ़ियों को पवित्र कर दिया, उनका उद्धार कर दिया परन्तु १२ गुणों से युक्त ब्राह्मण अपने आपको ही पवित्र नहीं कर पाया, स्वयं का ही उद्धार नहीं कर पाया क्योंकि उसमें मान था, अहंकार था कि मैं ब्राह्मण हूँ, मैं बड़ा हूँ, मैं तपस्वी हूँ, मैं शुद्ध (पवित्र) हूँ ।

दुनिया में सबसे बड़ी शिक्षा, सबसे बड़ी पढ़ाई है – 'भगवान् की भक्ति' । विशुद्ध भक्ति करने वाले ही दुनिया के सबसे बड़े विद्वान् हैं, सबसे बड़े योगी हैं, सबसे बड़े तपस्वी हैं । श्रीराधारानी के दरबार में न तो किसी के धन का सम्मान

है, न किसी के पद का । तुलसीदासजी ने कहा है – **"एहि दरबार दीन को आदर, रीति सदा चलि आई ।"** श्रीसूरदासजी कहते हैं – **"बड़ी है राम नाम की ओट । बैठत सबै सभा हरि जू की, कौन बड़ो को छोट ॥"** यहाँ सम्मान तो केवल उसी का है, जो भगवान् की भक्ति करता है, चाहे वह छोटा बालक है, बालिका है, स्त्री है अथवा चांडाल-शूद्र और ब्राह्मण है । भगवान् के दरबार के कोई भेदभाव नहीं है । कोई साधु है अथवा गृहस्थ है, ये सब तो केवल ऊपरी बातें हैं । भगवान् की भक्ति ही जिसका लक्ष्य है, वह सबसे बड़ा है । गोस्वामी तुलसीदासजी के शब्दों में स्वयं भगवान् राम ने ही अपने दरबार में भक्ति का निरूपण करते हुए बाहरी दाम्भिक साधनों का खण्डन कर दिया है –

कहहु भगति पथ कवन प्रयासा । जोग न मख जप तप उपवासा ॥
सरल सुभाव न मन कुटिलाई । जथा लाभ संतोष सदाई ॥ (श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड – ४६)

लोग व्यर्थ ही अपने साधन का अहंकार करते हैं । 'साधन का अहं' भी 'अहं' है । 'आश्रम का अहं' भी अहं है । चाण्डाल भी श्रेष्ठ है, जिसमें भक्ति है । वह ब्राह्मण भी किस काम का, जिसमें भक्ति नहीं है । भक्त को यह नहीं सोचना चाहिये कि मैं भक्त हूँ, यह भी अहं है । किसी भी प्रकार का अहं रखना भक्ति के विरोध में है । हम त्याग करते हैं तो त्याग का अहं रखना भी गलत है । प्रह्लाद जी ने कहा – **"न दानं न तपो नेज्या........"** (श्रीभागवतजी ७/७/५२)

सत्य तो यही है – तृणादपि सुनीचेन.....। छोटे से छोटे बनते जाओ, बस, यही सत्य है ।

श्रीबाबा महाराज कहते हैं कि हम कोई साधु-संत नहीं हैं, विद्वान् नहीं हैं, न हम कोई सदाचारी हैं, न ब्रह्मचारी हैं लेकिन इतना अवश्य है कि जब पहली बार मान मन्दिर से ब्रज चौरासी कोस की यात्रा प्रारम्भ की गयी तो मैंने कहा कि इस यात्रा के पर्चे में मेरा नाम मत डालना क्योंकि मैं न बड़ा हूँ और न ही बड़ा बनना चाहता हूँ । मैंने कहा कि यात्रा में श्रीजी का नाम रखो, इसलिए मान मन्दिर से संचालित यात्रा का नाम रखा गया – 'श्रीराधारानी ब्रजयात्रा ।'

इसलिए जिसको कुछ बनना है तो छोटा बने, छोटा बनने से ही श्रीजी की सच्ची कृपा प्राप्त होती है ।

परम परमार्थ 'श्रीभगवत्प्रेम'

आठ प्रकार के मैथुन होते हैं – **"स्मरणं कीर्त्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् । सङ्कल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेव च ॥"** जिसमें पहला है – स्मरणम् (याद करना), दूसरा है – कीर्तनम् – (चर्चा करना), तीसरा है - केलि (खेलना), चौथा है – प्रेक्षण (देखना), पाँचवाँ है – गुह्य भाषण (बात करना), छठवाँ है – संकल्प करना, सातवाँ है – अध्यवसाय (निश्चय करना), आठवाँ है – क्रियानिष्पत्ति (मैथुन क्रिया करना) ।

जब मनुष्य समाज में जाता है तो चर्चा होती है कि अमुक पुरुष का विवाह हुआ, उसकी पत्नी आयी, ऐसा हुआ-वैसा हुआ तो इससे स्मरण होता है । अमुक व्यक्ति का विवाह हुआ, उसका उससे सम्पर्क हुआ, यह चर्चा होती है तो स्मरण होने से पहले प्रकार के मैथुन से बचना कठिन हो जाता है । दूसरा मैथुन है विषय-भोगों की बात करना या उसकी चर्चा करना । तीसरा मैथुन है 'केलि' – खेलना । कॉलेज में गये, जैसे आजकल के स्कूल-कॉलेज में लड़का-लड़की आपस में खेलते हैं तो केलि (खेलना) ही मैथुन है । 'किसी को काम-वासना से देखना' चौथा मैथुन है । इसीलिए वर्णाश्रम व्यवस्था के अन्तर्गत ब्रह्मचारी को घर से अलग गुरुकुल में रखा जाता है क्योंकि वहाँ वह इन चार प्रकार के मैथुनों से बच जायेगा । वहाँ चर्चा नहीं होगी, स्मरण नहीं होगा, प्रेक्षण नहीं होगा, गुह्य भाषण (एकान्त में बातचीत) नहीं होगा । पाँचवाँ है – 'गुह्य भाषण' छिपकर के विषय-चर्चा करना । इसके बाद मनुष्य मन में संकल्प करता है कि अमुक लड़का बड़ा सुन्दर है अथवा अमुक लड़की बड़ी सुन्दर है, चलो, इससे बात करें; अच्छे रूप को देखकर बात करने लग गया; यह छठवाँ मैथुन है । सातवाँ मैथुन है 'अध्यवसाय' अर्थात् मनुष्य निश्चय करता है कि मुझे अमुक लड़के अथवा लड़की से बात करनी ही है, मुझे इससे मिलना ही है । आठवीं स्थिति पर जाकर वह मिलता है, सम्पर्क करता है, जिसे 'क्रिया-

निष्पत्ति' कहते हैं । इस प्रकार यह आठ प्रकार का मैथुन हुआ । वर्तमान काल में समाज की स्थिति ऐसी है कि इन आठ प्रकार के मैथुनों से बचना बहुत कठिन हो जाता है । लड़के-लड़के आपस में विषय सम्बन्धी बात करते हैं, लड़कियाँ-लड़कियाँ आपस में व्यर्थ वार्तालाप करती हैं । परस्पर में सांसारिक-विषयों की बातें होती रहती हैं तो मैथुन से बचना अत्यन्त कठिन हो जाता है । इसीलिए कलियुग में मायिक विकारों (कामादि दोषों) से बचने के लिए भगवान् की भक्ति करो, यही श्रीप्रह्लादजी ने कहा है – **प्रीणनाय मुकुन्दस्य न वृत्तं न बहुज्ञता ।** (श्रीभागवतजी ७/७/५१)

भगवान् को प्रसन्न करने के लिए 'भगवान् से प्रेम' कर लो – केवल यह लक्ष्य बन गया तो सब यज्ञ हो गये, समस्त दान हो गये, सब प्रकार के व्रत हो गये, सभी तप हो गये । यह लक्ष्य जिसका बन गया है, वह सबसे बड़ा विद्वान् है । जिन बालकों का यह लक्ष्य बन गया है, वे दुनिया के सबसे बड़े विद्वान् हैं । जिन बालिकाओं का यह लक्ष्य बन गया है कि हमें अपना जीवन भगवान् को समर्पित करना है, बस उन्होंने चारों वेद पढ़ लिए, सभी शास्त्र पढ़ लिए, सभी पुराण पढ़ लिए । जैसा कि श्रीप्रह्लादजी ने कहा है – **"मन्येतदर्पितमनोवचनेहितार्थप्राणं.........."** (श्रीभागवतजी ७/९/१०)

भगवान् को यदि तुमने अपना मन, अपनी वाणी, चेष्टाएँ, अर्थ (पैसा) और प्राण अर्थात् इन्द्रियाँ तथा शरीर अर्पण कर दिया तो तुम ब्राह्मणों से हजार गुना बड़े हो । अब कोई शंका करे कि हम साधु बन गये लेकिन क्या करें ? मेरे अन्तःकरण में विषय के संस्कार हैं, वे मुझे बार-बार सताते ही हैं और कभी-कभी गड़बड़ी भी हो जाती है । मान लो कोई प्रश्न करे कि साधु बनने के बाद भी किसी से काम चेष्टा हुई तो क्या उसका साधु बनना बेकार गया तो उसका उत्तर समझ लो । भगवान् श्रीकृष्ण ने भागवत के एकादश स्कन्ध में उद्धव जी से कहा है –

बाध्यमानोऽपि मद्भक्तो विषयैरजितेन्द्रियः । प्रायः प्रगल्भया भक्त्या विषयैर्नाभिभूयते ॥ (श्रीभागवतजी ११/१४/१८)

इन्द्रियाँ बलवान हैं । अतः भक्त समाज में भी प्रतिदिन हम लोग स्वादिष्ट व्यंजन खाने के लिए चेष्टा करते रहते हैं अथवा कोई-कोई विषय भोग के लिए प्रयत्न करता है । इसलिए भगवान् ने कहा कि जो मेरा भक्त अभी अजितेन्द्रिय है तो उसकी इन्द्रियाँ बार-बार उसे अपने-अपने विषय की ओर ले जायेंगी, बाधा देंगी । 'बाध्यमान' का अर्थ है बार-बार इन्द्रियाँ विषयों की ओर ले जा रही हैं । 'बाध्यमान' शब्द में संस्कृत व्याकरण के अनुसार शानच् प्रत्यय है । अंग्रेजी व्याकरण के अनुसार continuous tense में ऐसा होता है अर्थात् बार-बार भक्त गिर जाता है । गृहस्थ भक्त है, उसकी स्त्री पास में है और वह भक्ति मार्ग पर चल रहा है किन्तु विषय में गिरने की सम्भावना प्रायः बनी ही रहती है । जैसे किसी ने कहा कि हम गृहस्थ हैं । गृहस्थ हो तो बार-बार विषय में गिर जाते होगे परन्तु भगवान् कहते हैं कि एक दिन जब भक्ति प्रगल्भ हो जायेगी तब वह प्रगल्भ भक्ति विषयों को पटक देगी । कैसे पटकेगी तो भगवान् ने कहा –

यथाग्निः सुसमृद्धार्चिः करोत्येधांसि भस्मसात् । तथा मद्विषया भक्तिरुद्धवैनांसि कृत्स्नशः ॥ (श्रीभागवतजी ११/१४/१९)

भगवान् कहते हैं कि जिस प्रकार प्रचण्ड अग्नि सब लकड़ियों को जला देती है, वैसे ही मेरी भक्ति भी सभी पापों को, संचित कर्मों तक को जला देती है, अवश्य ही जला देती है । निरन्तर भक्ति करते रहो । **"न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव । न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता ॥"** (श्रीभागवतजी ११/१४/२०)

भगवान् बोले कि तुम मुझे योग के द्वारा प्राप्त नहीं कर सकते, न सांख्य अर्थात् ज्ञान से प्राप्त कर सकोगे, न स्वाध्याय (शास्त्रों के अध्ययन) से, न तपस्या से और न त्याग से मुझे प्राप्त कर सकते हो । केवल मेरी भक्ति ही तुमको बढ़ायेगी । यह एक सुलझा हुआ सिद्धान्त है । **"भक्त्याहमेकया ग्राह्यः श्रद्धयाऽऽत्मा प्रियः सताम् ।**

भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि सम्भवात् ॥" (श्रीभागवतजी ११/१४/२१)

भगवान् कहते हैं कि मैं तो एकमात्र भक्ति से ही पकड़ में आऊँगा । इसलिए श्रद्धा बनाये रखो । तुम यदि चाण्डाल भी हो तो घबराओ नहीं, मेरी भक्ति के प्रभाव से तुम पवित्र हो जाओगे । यदि कोई कहता है कि हम धर्म नहीं जानते तो कोई बात नहीं – **धर्मः सत्यदयोपेतो विद्या वा तपसान्विता ।**

मद्भक्त्यापेतमात्मानं न सम्यक् प्रपुनाति हि ॥ (श्रीभागवतजी ११/१४/२२)

कोई धर्म व सत्य से युक्त विद्या व तपस्या से भी युक्त है किन्तु यदि वह भक्ति से रहित है तो वह विद्या-तपस्या तुम्हें पवित्र नहीं कर पाएगी किन्तु भगवान् कहते हैं कि यदि मेरी भक्ति ढोंग की भी है तो वह पवित्र कर देगी । श्रीबाबामहाराज कहते हैं कि हम लोग यही प्रतिदिन करते हैं, यद्यपि भक्ति नहीं है, ढोंग करते हैं ।

वाग् गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च ।
विलज्ज उद्गायति नृत्यते च मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति ॥ (श्रीभागवतजी ११/१४/२४)

जो वाणी से भगवान् का कीर्तन करता है, कभी-कभी चित्त द्रवित भी हो जाता है, कभी-कभी मनुष्य भाव से रोता है, हँसता है, लज्जा छोड़कर गाता है, नाचता है, इसी से वह स्वयं को ही नहीं अपितु सारे संसार को पवित्र कर देता है ।

श्रीबाबा महाराज कहते हैं कि हम लोग जो प्रतिदिन कीर्तन करते हैं, वह वास्तविक भक्ति तो नहीं है, हम स्वयं ही कहते हैं कि हम ढोंग करते हैं लेकिन वह ढोंग भी सारे संसार को पवित्र कर देता है । कोई कहे कि कैसे पवित्र करेगा क्योंकि हम तो रोज बढ़िया व्यंजन, स्वादिष्ट पदार्थ खाना चाहते हैं तो भगवान् कहते हैं –

यथाग्निना हेम मलं जहाति ध्मातं पुनः स्वं भजते च रूपम् ।
आत्मा च कर्मानुशयं विधूय मद्भक्तियोगेन भजत्यथो माम् ॥ (श्रीभागवतजी ११/१४/२६)

जैसे आग में तपाने पर सोना अपने मैल को छोड़ देता है और चमकने लगता है, वैसे ही मेरे भक्तियोग के प्रभाव से आत्मा कर्म वासनाओं से मुक्त होकर मुझको ही प्राप्त हो जाता है । इसमें समय लगता है ।

यथा यथाऽऽत्मा परिमृज्यतेऽसौ मत्पुण्यगाथाश्रवणाभिधानैः ।
तथा तथा पश्यति वस्तु सूक्ष्मं चक्षुर्यथैवाञ्जनसम्प्रयुक्तम् ॥ (श्रीभागवतजी ११/१४/२६)

भगवान् कहते हैं कि जैसे-जैसे तुम्हारा मन शुद्ध होगा, कैसे होगा ? मत्पुण्यगाथा – मेरी कथाओं को सुनो और कहो । मेरी कथाओं के श्रवण-कीर्तन से जैसे-जैसे तुम्हारा चित्त शुद्ध होगा, वैसे-वैसे ही तुम सूक्ष्म वस्तु को देखोगे । जैसे अंजन लगाने से धीरे-धीरे मोतियाबिन्द कट जाता है ।

प्राचीन भारत में मोतियाबिन्द का ऑपरेशन नहीं होता था । हमारे देश में शीशा फूँक कर एक अंजन बनाया जाता था, उस अंजन को लगाने पर धीरे-धीरे मोतियाबिन्द कट जाता था । भगवान् कहते हैं कि जैसे वह अंजन मोतियाबिन्द काट देता है, वैसे ही तुम्हारा मन शुद्ध हो जायेगा, केवल मेरे कथा-कीर्तन का सेवन करते रहो ।

श्रीबाबा महाराज का कथन है कि जो भी बालक-बालिकाएँ हैं, यदि उनके मन में केवल धारणा ही है तो इससे ही उनके समस्त पाप जल जायेंगे । 'धारणा' का अभिप्राय है कि अभी वह ऊँची स्थिति नहीं है कि तुम सिद्ध बन गये अथवा नैष्ठिक ब्रह्मचर्य को प्राप्त हो गये किन्तु यदि धारणा है तो केवल इसी के बल से ही तुम्हारे सारे पाप नष्ट हो जायेंगे । बहुत से लोग आकर यहाँ शंका करते हैं, भय उत्पन्न करते हैं कि यहाँ रहने वाले बालकों का क्या होगा ? भविष्य में ये पतित हो जायेंगे । यहाँ की बालिकाएँ भी भविष्य में बड़ी होकर पतन को प्राप्त हो जाएँगी परन्तु श्रीमद्भागवत के अनुसार यदि धारणा भी है तो उससे अशुभ जल जाते हैं । मान लो कोई भक्ति मार्ग पर चलते हुए गिर गया तो गिरे हुये तो हम सभी हैं ही, अभी उठे कहाँ हैं ? हम जब ब्रज में आये थे तो लोग मुझसे कहते थे कि तू अपनी विधवा अनाथ माँ को छोड़कर यहाँ चला आया तो तू नरक में जायेगा । उस समय हम कहते थे कि नरक में जायेंगे क्या ? मुझे तो यही प्रतीत होता है कि मैं नरक में ही पड़ा हुआ हूँ क्योंकि भौतिक भक्तिहीन जगत् नरक ही तो है परन्तु मैं नरक से छूटने का प्रयास अवश्य ही कर रहा हूँ । नरक जायेंगे क्या नरक में तो पड़े ही हैं, इसलिए भक्ति करते हुए गिरेंगे तो गिर जायेंगे परन्तु धारणा अवश्य ही करना चाहिए । भागवत के अनुसार धारणा से ही भीष्म पितामह के पाप जल गये । पाप के कारण ही वे शर शैय्या पर पड़े थे । जब मनुष्य धारणा करता है कि हम यह काम मजबूती के साथ करेंगे तो उसके अशुभ (पाप) जल जाते हैं । **"विशुद्धया धारणया हताशुभस्तदीक्षयैवाशु गतायुधव्यथः ।"** (श्रीभागवतजी १/९/३१)

भीष्म जी के प्रत्येक अंग में बाण चुभे हुए थे, उसके कारण उन्हें जो पीड़ा हो रही थी, वह तो भगवान् के दर्शन मात्र से तुरंत दूर हो गयी तथा विशुद्ध धारणा से उनके समस्त अशुभ नष्ट हो गये ।

श्रीबाबा कहते हैं कि बहुत से लोग मुझसे कहते हैं कि आपके मन्दिर के ये बालक-बालिकायें भविष्य में गिर जायेंगे और विवाह करेंगे । हम उनसे कहते हैं कि जब गिरेंगे तो गिरेंगे और मान लो कुछ लोग नहीं गिरे, चलते रहे तो भगवान् ने कहा है – **"धर्मः सत्यदयोपेतो ...."** (श्रीभागवतजी ११/१४/२२)

भक्ति से यदि रहित हैं तो धर्म, सत्य, दया, विद्या और तपस्या आदि पवित्र नहीं करेंगे । इसलिए राधारानी की दया से हम लोग जो कर रहे हैं – **"वाग् गद्गदा द्रवते यस्य........."** (श्रीभागवतजी ११/१४/२४)

संकीर्तन में हम लोग नाचते हैं, चाहे भगवान् में प्रेम नहीं है किन्तु लज्जा छोड़कर नाचते हैं तो केवल यही दुनिया का सबसे बड़ा साधन है । इसलिए कोई जप करता है, कोई तप करता है, कोई ध्यान लगाता है लेकिन हम कुछ नहीं करते । न हम जप करते, न तप करते, न ध्यान लगाते हैं । हम केवल ढोंग करते हैं, केवल नाचते हैं । यही बात मीराबाई ने कही है – **"मैं तो साँवरे के रँग राँची । साजि सिंगार बाँधि पग घुँघरू, लोक लाज तजि नाँची ॥" 'गई कुमति लई साधु की संगति'** कुमति चली गयी । लोक लाज, सामाजिक मर्यादा का बन्धन, मान-प्रतिष्ठा, रानी-महारानी, ये मर्यादा तथा हम स्त्री हैं, ये सब कुमति है । सच्चे संत का संग किया तो 'भक्ति रूप भई साँची ।' श्रीमीराजी कहती हैं कि मेरे सद्गुरुदेव रैदासजी ने मुझे सच्ची भक्ति प्रदान की । 'उन बिन सब जग खारो लागत, और बात सब काँची ।' अन्य सभी साधन कच्चे हैं । सच्चा साधन यही है । **"मीरा प्रभु गिरधर लाल सों, भगति रसीली जाँची ॥"** श्रीमीराबाईजी कहती हैं कि मैंने गिरधर लाल से रसीली भक्ति माँगी थी और उन्होंने मुझे वह दे दी । रसीली भक्ति है नाचना और गाना । मीराजी जब तक जीवित रहीं तब तक वे सदा नाचती और गाती रहीं । इस रसीली भक्ति के प्रभाव से, गान और नृत्य से उन्हें क्या मिला तो वे कहती हैं – **"गाय-गाय गिरधर के गुण निशदिन, काल व्याल सों बाँची ।"** मैं गिरधारीलाल के गुण गा करके और नृत्य करके काल रूपी सर्प से बच गयी हूँ, जो सारे संसार को खा जाता है । मीराजी ने जो गाया था, वह करके दिखा दिया । मीराजी अंतिम समय भी मृत्यु को प्राप्त नहीं हुई, वे तो द्वारका में अपने गिरधारी के सामने पद गाते और नृत्य करते हुए उन्हीं के श्रीविग्रह में लीन हो गयीं ।

'राम-जनम सुखमूल'

चैत्र, शुक्ल, नवमी को मध्य दिवस के अभिजित मुहूर्त में भगवान् श्रीराम का प्राकट्य होते ही चराचर सृष्टि एक नवीन आह्लाद से आनन्दित हो गई । श्रीरामावतार साधारण से साधारण जीवों पर विशेष भक्तिमयी कृपा करने के लिए ही हुआ है । संसार में सदा आसक्त रहने वाले प्राणी सहज ही भक्तिमय आचरण करने लगें, उसके लिए प्रभु श्रीराम ने मानवीय रूप में सांसारिक मर्यादामय लीलाएँ की हैं; जिन्हें देखकर-सुनकर स्वाभाविक ही लोग वैसा ही आचरण करने लगते हैं, सत्य-धर्म-दया-भक्ति से परिपूर्ण 'श्रीरामचन्द्रजी के चरित्रों' का अनुसरण करके कोई भी जीव अति आसान ढंग से विशुद्ध 'भागवत-पथ' पर आरूढ़ हो सकता है । भगवान् राम की सम्पूर्ण लीलाएँ लोक-संग्रह अर्थात् लोगों को आदर्श शिक्षा (प्रेरणा) देने के लिए ही हुई हैं । 'मर्यादा में रहना' अर्थात् 'सीमा में रहना'; धर्म-प्रेम इत्यादि सभी मर्यादा में बँधकर ही होता है । मर्यादा (सीमा) एक कवच की भाँति है, जो हर समय संरक्षा का कार्य करती है । जब भी मर्यादा टूटती है, तभी विनाश या पतन होता है । इसीलिये भगवान् श्रीराम ने बाल्यावस्था से लेकर धामगमन तक की समस्त लीलाओं में एक आदर्श भक्तिमय मर्यादा की संस्थापना की है, क्योंकि श्रीरामावतरण का प्रमुख प्रयोजन एकमात्र श्रीभक्तियोग को स्थापित करना ही था । अतः गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीमहाराज ने भगवान् राम के अवतार का मूल कारण बताते हुए लिखा है – 'ब्यापक बिस्वरूप भगवाना । तेहिं धरि देह चरित कृत नाना ॥ सो केवल भगतन हित लागी । परम कृपाल प्रनत अनुरागी ॥' प्रेमीभक्तजनों के भावयोग को बढ़ाने व रक्षा करने के लिए ही श्रीभगवान् धराधाम पर अवतरित होते

हैं । भगवान् श्रीराम के अवतरण की लीलाएँ चराचर जीव-जगत् के लिए अति सुखद हैं । श्रीरामचन्द्रजी के चरित्र साधारण से साधारण लोगों को भवसागर से पार होने के लिए बहुत बड़ा सम्बल व आधार हैं । आज भी समस्त धाम-तीर्थ-क्षेत्रों में श्रीराम की लीलाओं का गुणगान होता है; यहाँ तक कि ब्रजभूमि में तो जगह-जगह श्रीरामचरित का पाठ, स्मरण-चिन्तन व लीला-मंचन होता रहता है । श्रीकृष्णलीलाकाल में तो स्वयं यशोदा मैया अपने लाला कन्हैया को रामकथा सुनातीं तथा ब्रजवासीजन 'राम-राम' बोलकर नमन-वंदन व मंगल-कार्य करते, वही परम्परा आज भी चलती आ रही है । श्रीकृष्ण ने तो ब्रजलीला में अपने प्रेमी गोपी-ग्वालों को सम्पूर्ण रामलीलाओं का साक्षात् दर्शन कराया । ब्रजगोपियाँ भी श्यामसुन्दर के सखा श्रीउद्धवजी को श्रीराम-चरित्र का स्मरण दिलाती हैं । अतः कथनाशय यही है कि श्रीराम की लीलाओं को सुनकर-समझकर ही भावमयी भक्ति को अच्छी तरह से समझ सकते हैं । तभी तो श्रीशुकदेव महाप्रभु ने भी परम रसज्ञ श्रोता श्रीपरीक्षितजीमहाराज को पहले श्रीरामकथा को कहकर ही श्रीकृष्ण लीलाओं को सुनाया है । रामचरित्र रूपी चश्मे को लगाकर ही कृष्णचरित्र को देखा व समझा जा सकता है । भक्तमाल सुमेरु गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीमहाराज कृत 'श्रीरामचरितमानस' सरल-सरस व ग्राम्य भाषा में होने के कारण सबकी पूज्यनीय व पठनीय बन गई है । इसलिए श्रीरामजी का अवतार एक विशेष कृपामय धर्म-प्रेम-भक्ति से भरा हुआ है – 'चर अरु अचर हर्षजुत राम जनम सुखमूल ।' 'श्रीराम-जन्म' समस्त सुखों का मूल कारण है । भारतवर्ष सनातन संस्कृति की प्रमुख केन्द्र भूमि है, जहाँ से सम्पूर्ण संसार भक्तिमय धर्म के प्रेम-प्रकाश से प्रकाशित होता है । वर्तमान समय में सनातन धर्मावलम्बियों को अपनी महिमाशालिनी संस्कृति-सभ्यता के गौरव को जानने-समझने व संवर्द्धन-संरक्षण की अति आवश्यकता है । भारतीय संस्कृति के मूल में गौवंश व गुरुकुल-पद्धति है, जिसका हर तरह से संरक्षण-संपोषण होना चाहिए । गायों की रक्षा व सेवा करने से सहज ही भक्ति-धर्म बढ़ेगा, संकीर्तन-आराधना को बल मिलेगा तथा भारतीय शिक्षा-पद्धति के अनुसार बालकों को पढ़ाने से उन्हें गायों की महिमा का ज्ञान होगा तथा गौवंश के संरक्षण में शक्ति मिलेगी क्योंकि सहज ही युवा पीढ़ी गौमाता की सुरक्षा करेगी । इस प्रकार से गौ-भक्ति व संकीर्तन-शक्ति बढ़ेगी क्योंकि दोनों का पारस्परिक अभिन्न सम्बन्ध है, दोनों की समान रूप अति आवश्यकता है, जो सनातन-संस्कृति की नींव (आधारशिला) हैं । भगवान् श्रीराम का अवतार का कारण भी संस्कृति का संरक्षण करना था – 'बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार ।' श्रीरामावतार से सबसे बड़ी शिक्षा (प्रेरणा) 'गौसेवा व संत-सेवा' की मिलती है अर्थात् 'गौवंश की सेवा' से भक्तिमय भावनाएँ बढ़ेगीं, जिससे भक्तों की वास्तविक सेवा-भक्ति होगी तथा भक्तों द्वारा की गई 'आराधना-संकीर्तन' से 'गायों की सेवा-भक्ति' बढ़ेगी ।

श्रीराधारानी की अष्ट महासखियाँ

अष्टसखियों के नाम हैं – (१) श्रीरंगदेवी जी (२) श्रीसुदेवी जी (३) श्रीललिताजी (४) श्रीविशाखाजी (५) श्रीचम्पकलताजी (६) श्रीचित्रलेखाजी (७) श्रीतुंगदेवीजी (८) श्रीइन्दुलेखाजी ।

श्रीरङ्गादि सुदेविका च ललिता बैशाखिका चम्पिका । चित्रातुङ्गसखीन्दुलेखिकपरा चाष्टौ प्रधान प्रियाः ॥ (श्रीनिम्बार्काचार्यजी)

श्रीललिताजी

उन्नत अटावलम्बिनी किशोरी सहचरी श्री ललिता जू श्री राधा-माधव की विविध लीलाओं में परम सहयोगिनी हैं । ऊँचा गाँव में अपनी माता शारदा व पिता महाभानु से, श्रीराधा जन्म से दो दिन पूर्व अवतरित हुईं । यहीं सखीगिरि पर्वत है, जिस पर सूर्य, चन्द्र, खीर कटोरा, दही कटोरा, पुष्करणी, रास मण्डल आदि कृष्ण कालीन चिन्ह हैं । पर्वत के निकट ही तत्कालीन सखीकूप है, जिसका पानी सखियों ने श्रीकृष्ण को पिलाया था । इसी के निकट, जहाँ श्रीकृष्ण फिसलते थे, खिसलनी शिला है जो आज भी सबके चित्ताकर्षण का केन्द्र बनी हुई है । यहाँ ललिता सखी विवाह स्थली

है जहाँ श्रीकृष्ण के साथ श्री ललिता जी का विवाह हुआ था । श्रील नारायण भट्ट जी का कथन है कि यहाँ सभी सखियों के साथ श्रीकृष्ण का विवाह सम्पन्न हुआ था । विवाहोपरान्त मेंहदी चर्चित चरणों से जब वे चलीं तो उनके पद विन्यास से सारी शिला मेंहदी से रंग गयी । आज भी भगवान् की उस लीला का आभास कराने वाली वह शिला मेंहदी से रंगी हुई है । आगे ललिता अटा (अटोर पर्वत) है जहाँ ललिता जी श्री कृष्ण के साथ खेलती थीं । ललिता अटा के नीचे ही देह कुण्ड है । यहाँ राधा-माधव ने देह दान किया था । यहाँ दान की प्रथा है । यहाँ अवश्य कुछ न कुछ दान करना चाहिए और दान भी ऐसा हो जो अविनाशी हो । नाम दान सर्वश्रेष्ठ दान है, यहाँ अपने अवगुणों का त्याग करना चाहिए । निषिद्ध अभक्ष्य वस्तु बीड़ी, तम्बाकू, शराब आदि का व्यसन छोड़ना चाहिए । काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ, मात्सर्य अपने इन सूक्ष्म विकारों को छोड़ना चाहिए ।

<u>ऊँचा गाँव</u> - गोप नाम महाभानुः सारदी नामा गोपिनी । उच्चग्रामं प्रवास्तव्यौ दम्पती पर्वतोपरि ॥
तयोः कन्या भविष्यति ललिता नाम विश्रुता । मनोहरा च गौरांगा कृष्णचिन्हेन लाञ्छिता ॥
तस्य ग्रामस्य पश्चिमभागतः सखीगिरि नाम पर्वतोऽस्ति । तस्योपरि चैका पुष्करिणी स्थिता ॥

<u>आदिपुराणे</u> – भाद्रस्य शुक्लषष्ठी तु विशाखा ऋक्षसंयुता । परविद्धा सदा कार्य्या पूर्वविद्धा न कर्हिचित् ।
सूर्योदयात्समारभ्यैकादश घटिकाः गताः ॥ तत्समये ललिताजन्मोत्सवं समकुर्व्वत ।श्रीललिताया अभिषेकंपद्धत्योक्तेन विधिना कार्य्यम् ।श्रीललिताया अभिषेकस्य श्रीराधाभिषेकाद्भेदः, भिन्नत्वेन प्रकारेण पृथक् मन्त्रैस्तु कुर्य्यात् ।तत्रैव पर्वतस्याधः पश्चिमतः खिशिलिनी सिला स्थिता । तत्र गोपालैः सह श्रीकृष्णः समभ्यागतः।

<u>वायुपुराणे</u> – ललिता ललितावाणी राधायाऽत्यन्तवल्लभा । मुख्या सखी समाख्याता सर्वदा सार्द्धगामिनी ॥
इत्यादौ श्रीललितास्थानवर्णनम् ।

महाभानु नाम के गोप जिनको कुछ लोग अशोक भी कहते हैं और उनकी पत्नी शारदी; ये ऊँचा गाँव में पर्वत के ऊपर रहते थे । उनकी कन्या ललिता नाम से प्रसिद्ध होंगी, जो बड़ी ही मनोहरा, गौरांगी और कृष्ण चिन्ह से युक्त होंगी । उस ग्राम के पश्चिम भाग में सखी गिरि नाम का पर्वत है, उसके ऊपर एक पुष्करणी पोखर है । भाद्रपद शुक्ल पक्ष षष्ठी तिथि विशाखा नक्षत्र से युक्त परविद्धा ग्रहण करनी चाहिए पूर्वविद्धा नहीं । सूर्योदय से लेकर ११ घटी व्यतीत हो गयी, उस समय ललिता जी का जन्मोत्सव हुआ । ललिता जी के अभिषेक की पद्धति ग्रन्थ में कही गई विधि से करनी चाहिए । श्री ललिता जी के अभिषेक का श्रीराधा जी के अभिषेक से भेद है । इसलिए भिन्न प्रकार से पृथक मंत्रो से करना चाहिए । वहीं पर्वत के नीचे पृष्ठ भाग में खिसलनी शिला है, वहाँ ग्वालबालों के साथ श्रीकृष्ण आये । भाद्रपद शुक्लपक्ष द्वादशी तिथि श्रवण नक्षत्र में सूर्योदय काल से ६ घटी बीत जाने पर ललिता जी अपनी सुमना आदि ८ सखियों के साथ वहाँ आईं ।

ललिता जी की ८ सखियों के नाम सुमना, सुसुपा, कांची, दीपिका, प्रदीपिका, नागरी, प्रवला, गौणी । लोकभाषा में इनके अन्य नाम भी कहे जाते हैं । वहाँ खिसलनी शिला पर ललिता जी ने उन सखियों संग क्रीड़ा की । उसके बाद नन्दनन्दन ने ललिता जी का पाणिग्रहण किया । पुष्पों से श्रृंगार करके सभी देवता उपस्थित हो गए । विधिवत मंत्रोच्चारण पूर्वक ललिता जी से विवाह किया । तदुपरान्त पर्वत के पश्चिम भाग में सभी कृष्ण आदि ग्वाल-बाल आ गए । अपनी अष्ट सखियों के साथ ललिता जी भी आ गईं । वहाँ सभी क्रीड़ा के श्रम से श्रान्त हो गए, उसी समय उस स्थान पर जल क्रीड़ा की, स्नान किया जिससे देह कुण्ड की उत्पत्ति हुई । वहीं स्वर्ण दान करते हुए श्रीकृष्ण ग्वाल-बालों के साथ अपने घर आ गए । ललिता जी अपनी उप-सखियों के साथ ऊँचा गाँव में अपने घर आ गयीं । वहाँ शारदी मैया के आगे सखियों ने विवाह की बात कह दी । तब महाभानु अथवा अशोक नाम के गोप ने नन्द बाबा को बुलाकर विवाह की सामग्री भेंट की और सिंहासन पर श्रीकृष्ण को एवं उनके दक्षिण भाग में ललिता जी को बैठाकर अनेक रत्न भेंट किये । श्री ललिता जी की वाणी श्रीजी को अत्यन्त प्रिय है । ये सदा श्रीजी के साथ में रहती हैं एवं उनकी मुख्य सखी कही जाती हैं ।

श्रीविशाखाजी –

(श्री अंजन वन (आँजनौंख) - अथ कनिष्ठासखीविशाखानिवासस्थानं वर्णये कनिष्ठा (द्वितीया) सखी विशाखा जी का निवास स्थान वर्णन किया जा रहा है । आदि वाराह पुराणानुसार (१) अन्जपुर नामक ग्राम में (वर्तमान नाम आंजनोख) सुभानु नाम के गोप अपनी भार्या निमिष-नन्दिनी देवदानी के साथ रहते थे । उन दम्पति के कृष्ण के सभी लक्षणों से युक्त गुणवती, रूपवती विशाखा नाम की कन्या उत्पन्न हुई ।

भविष्योत्तर पुराणानुसार

(२) भाद्रपद मास के शुक्लपक्ष की अष्टमी से युक्त नवमी अर्थात् पूर्व विद्धा एवं पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र ग्रहण करना चाहिए । विशाखा जी के जन्मोत्सव में परविद्धा तिथि त्याज्य है । किसी समय श्रीकृष्ण गोधूलि की बेला में विशाखा जी के कर-कमल को अपने कर-कमल में ग्रहण कर गर्जपुर अर्थात् गाजीपुर में आये ।

बृहद्गौतमीये तन्त्रानुसार

(३) ललिता जी वहाँ अपनी आठ सखियों के साथ आईं । ललिता और विशाखा को देखकर के प्रेम विवश श्रीकृष्ण वहाँ गए, वहीं पर ललिता जी ने विश्वकर्मा को आज्ञा देकर के अपने मन्दिर का निर्माण कराया और वहाँ चँवर धारण करके स्थित हुईं ।

(४) उसी क्षण प्रेम विवश श्रीकृष्ण ने प्रेम का निर्वहन करते हुए गोधूलि बेला में विशाखा जी का पाणिग्रहण किया और सखियों के साथ जल क्रीड़ा की । प्रेममयी लीला करने से उस स्थल का नाम प्रेम कुण्ड (प्रेमसरोवर) पड़ा । श्रीकृष्ण ने वह मनोहर मन्दिर श्री ललिता जी के लिए प्रदान किया । विशाखा जी का स्थान श्रीकृष्ण के दक्षिण भाग में है । श्रीविशाखा जी ने अपनी सखियों के साथ अपने घर को प्रस्थान किया ।

मत्स्य पुराणानुसार

(५) विशाखा जी की आठ सखियाँ – मंगला, सुमुखी, पद्मा, सुपद्मा, सुमनोहरा, सुपत्रा, बहुपत्रा, पद्मलेखा, ये विशाखा जी की उप-सखियाँ हैं, उनके लोक भाषा में अन्य नाम भी बोले जाते हैं । महासखी श्री विशाखा जू का यह ग्राम है । भिन्न-भिन्न गाँव में गोपियों के भिन्न-भिन्न यूथ रहते थे क्योंकि कृष्णावतार के समय पूर्वावतारों से वर प्राप्त समस्त गोपियाँ महारास के लिए ब्रज में आईं, उनमें वेद की ऋचाएँ भी आईं । इन श्रुति रूपा गोपियों ने श्वेतद्वीप में जाकर अद्भुत तप किया और प्रभु के प्रसन्न होने पर उनके इस रस रूप विग्रह के दर्शन प्राप्त करने का वर प्राप्त किया, तब प्रभु ने आदेश दिया कि तुम सब वृन्दावन में जन्म लो, ब्रजवासी बनो तब ये रस सुलभ होगा ।

नायं सुखापो भगवान् देहिनां गोपिकासुतः । ज्ञानिनां चात्मभूतानां यथा भक्तिमतामिह ॥ (श्रीभागवत १०/९/२१)

रस स्वरूप श्रीकृष्ण तो ब्रजवासियों के लिए सुलभ हैं, तपस्वी, ज्ञानी, कर्मकाण्डी को नहीं । ब्रज-रज, रास-रस प्राप्ति के लिए उन श्रुति स्वरूपा गोपियों ने विस्तृत वृन्दावन में जन्म लिया । जन-मानस की ऐसी मान्यता है कि रास यमुना के किनारे और वृन्दावन में वंशीवट में ही हुआ है, जब कि ऐसा नहीं है । ब्रज के वन वन में, घर-घर में, भवन, आँगन में रास होता था, इसका प्रमाण केवल शास्त्र ही नहीं अपितु ब्रज के पुरातन परम्परा के लोक गीतों का भाव भी यही है । यथा – **"नन्द के तोय खिलौना लै दूँगी, मेरे अँगना में वंशी बजाय । भला रे मेरे अँगना में रास रचाय ।"** इस प्रकार घर-घर में रास होता था । एक बार अन्जनवन की गोपियों को प्रतीक्षा करते हुए मध्य रात्रि हो चली, श्याम सुन्दर बहुत विलम्ब से रास के लिए आये । श्याम सुन्दर को देखते ही एक ने उनके कर को अपने कर-तल में रखा, दूसरी ने वक्ष पर झूलती वन माला को सज्जित किया । तीसरी तो पूछ ही बैठी । "आज आगमन में इतना विलम्ब कैसे हो गया ?"

श्यामसुन्दर बोले - "आज भांडीर वन में हमारे गुरु श्री दुर्वासा जी पधारे थे, उनका अर्चन पूजन करने में विलम्ब हो गया ।" गोप सुन्दरियों ने कहा –"आपके गुरुवर? हम भी आपके गुरुदेव का दर्शन करना चाहती हैं और उन्हें भोजन कराना चाहती हैं", । श्रीकृष्ण बोले – "हमारे गुरु जी तो दूर्वाहारी हैं, मात्र दूब का रस पीते हैं किन्तु तुम दूषित काम से

परे निश्चल, निर्दोष प्रेम युक्त हो, सारा जग तुम्हारी अमल प्रीति की महिमा को जानता है, हो सकता है तुम्हारा भोजन गुरुदेव ग्रहण कर लें ।" गोपियों ने कहा – "श्याम सुन्दर, किन्तु हम जाएँ कैसे ? श्रावण मास की यह यमुना किनारे तोड़ कर बह रही है ।" श्रीकृष्ण बोले – "तुम यमुना से कह देना, यदि कृष्ण बालब्रह्मचारी हैं तो हमें मार्ग दे दो, तुम्हें मार्ग मिल जाएगा" ऐसा ही हुआ, मध्य रात्रि को उन ग्राम्याओं ने जब यह कहा – "यमुने ! यदि श्रीकृष्ण बालब्रह्मचारी हों तो हमें मार्ग दो ।" झट यमुना जी ने मार्ग दे दिया और वे सब उस पार चली गयीं । दुर्वासा जी के निकट पहुँच कर गोपियों ने प्रार्थना की "महाराज ! हम आपका दर्शन करने एवं भोग लगाने आई हैं ।" दुर्वासा जी ने कहा – "हम तो कृतकृत्य, परम हंस, सदा संतुष्ट रहने वाले हैं । भोजन की कोई आवश्यकता तो है नहीं, तुम्हारी अधिक ही इच्छा है तो अपने हाथ से स्वयं मेरे मुख में डाल दो ।" गोपियाँ एक एक कौर ऋषि के मुख में डालने लगीं । ऋषि ने ऐसा विशाल मुख किया कि डला भर-भरकर गोपियाँ खिलाने लगीं और थोड़ी देर में सब खाद्य सामग्री समाप्त हो गयी । अंत में गोपियों ने कहा – "महाराज ! अब हम जायें कैसे? " दुर्वासा –"जैसे आई थीं वैसे ही चली जाओ ।" गोपियाँ – उस समय तो "यदि श्रीकृष्ण बालब्रह्मचारी हैं तो मार्ग दे दो" ऐसा कहने पर हमें यमुना ने मार्ग दे दिया था । दुर्वासा – "ठीक है, इस बार कहना यदि दुर्वासा पौनाहारी हैं, उन्होंने कभी कुछ न खाया हो तो यमुना मार्ग दे दे ।" गोपियों ने विचार किया, यह कैसी विडम्बना? सहस्त्रों थाल चट कर गए और अपने को पौनाहारी कहते हैं । चलो भाई, जैसे शिष्य (कृष्ण) हैं, वैसे ही गुरु । यमुना किनारे पहुँच कर उन सब ग्राम्याओं ने कहा – "हे यमुने ! यदि दुर्वासा जी ने कभी भी अन्न जल ग्रहण न किया हो तो हमें मार्ग दे दो ।" झट यमुना जी ने मार्ग दे दिया । वे पार हो गईं । श्रीकृष्ण के निकट आकर बोलीं – "हमें तो तुम और तुम्हारे गुरु दोनों ही मिथ्यावादी लगते हैं । तुमने स्वयं को बालब्रह्मचारी कहा और दिन-रात तो हमारे साथ नाचते-गाते हो, ब्रह्मचारी पुरुष तो स्त्री दर्शन तक नहीं करता है और तुम्हारे गुरु स्वयं को पौनाहारी कहते हैं, हमारे द्वारा ले जाए गए सहस्त्रों थाल भोजन तो खा गए तो क्या यह मिथ्यावाद नहीं है? " श्रीकृष्ण बोले – "हे गोपियो ! वस्तुतः मनुष्य में जब अहं नहीं होता है तो उसके द्वारा किये गए कर्म अकर्म बन जाते हैं, उसके लिए निषिद्ध कर्म भी बन्धक सिद्ध नहीं होता है ।" गीता का बीज तो यहीं से आरम्भ हो गया था । कुरुक्षेत्र, महाभारत काल में तो उसका विस्तार हुआ है । "यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः । ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः ॥" (गीता.४/१९)

श्री अंजन वन में कजरोटी शिला है, एक बार श्रीजी अंजन लगाना भूल गयी तो विशाखा जी ने कजरोटी शिला प्रकट की, जिस पर उँगली घिसकर श्रीजी ने अपने नयनों में अंजन रंजित किया, (लगाया) आज भी यह शिला दर्शनीय है, इस पर उँगली घिसकर काजल लगाया जा सकता है ।

<u>ततो अन्जनपुरवन प्रार्थना-मन्त्र</u> :- **देवगंधर्वलोकानां रम्यवैहाररूपिणे । वैचित्रमूर्त्तये तुभ्यमंजनपुःवनाह्वय ॥** (कूर्म्मपुराण)

हे देवता, गन्धर्व, मनुष्य के रमणीय विहार अवनि ! विचित्र मूर्ति स्वरूप, हे अञ्जन वन ! आपको नमस्कार है ।

<u>ततो किशोरीकुंडस्नानाचमन प्रार्थना मन्त्र</u> :-

किशोरीस्नानरम्याय पीतरक्तजलाप्लुतः । तीर्थराज नमस्तुभ्यं कृष्णक्रीडाविधायिने ॥ (कूर्म्म पुराण)

किशोरी जी के स्नान से रमणीक, पीले, लाल जल से परिपूर्ण किशोरी कुण्ड ! श्रीकृष्ण क्रीड़ा विधान करने वाले तीर्थराज आपको नमस्कार है ।

<u>ततो कृष्णान्वित किशोरीदर्शन प्रार्थना मन्त्र</u> :-

यशोदानन्दकृष्णाय प्रियायै सततं नमः । किशोररूपिणै तुभ्यं वल्लभायै नमोऽस्तु ते ॥ (कूर्म्म पुराण)

हे यशोदा जी को आनन्द प्रदान करने वाले, किशोर स्वरूप श्री प्रिया प्रीतम जी, आप दोनों को बार बार प्रणाम है ।

<u>श्रीइन्दुलेखाजी</u>

अथेन्दुलेखानिवासस्थानवर्णनम् - विष्णुरहस्ये

अस्याः सख्यः समाख्याताः काञ्चनेन समन्विताः । सुलेखा पद्मवदना विचित्रा कामकुन्तला ।

सुगन्धा नागकेशी च कटिसैंध्री सुलतिका । लेखायास्ता उपासख्य अष्टौ च कथिताः शुभाः ।
इन्दुलेखायाः स्थानं श्रीकृष्णस्य वामभागे श्रीराधायाःनिकटोपवेशनम् इत्यादाविन्दुलेखायाः स्थानवर्णनम्-

गौतमीय तंत्र

दक्षिण दिशा में स्थित रंकपुर (रांकोली) गाँव में रणधीर नाम के श्रेष्ठ गोप रहते थे । इनकी पत्नी का नाम सुमुखी था । इन दम्पत्ति के इन्दुलेखा नाम की मनोहरा कन्या उत्पन्न हुई ।

भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष की दशमी विद्धा एकादशी तिथि थी । यहाँ सर्वदा पूर्वविद्धा ही ग्रहण करनी चाहिए परविद्धा नहीं । सूर्योदय काल से सोलह घटी (६घंटे २४मिनट) व्यतीत हो जाने पर अभिजित मुहूर्त में इन्दुलेखा जी का जन्म हुआ । विष्णु रहस्य - इनकी स्वर्णाभरणों से आभूषित सखियों के नाम कहे गये हैं – सुलेखा, पद्मवदना, विचित्रा, कामकुन्तला, सुगन्धा, नागकेशी, कटिसैन्ध्री, सुलतिका । इन्दुलेखा जी की ये सभी शुभ लक्षणों से युक्त आठ उपसखियाँ कही गयी हैं । इन्दुलेखा जी का स्थान श्रीकृष्ण के वाम भाग में है । ये श्रीजी के निकट विराजती हैं ।

श्रीचम्पकलताजी

अथ चम्पकलतास्थानवर्णनम् – गौतमीये - चम्पकलता सखीभिरष्टाभिः स्वगृहं गता ।

चम्पकलतायाः स्थानं श्रीकृष्णस्य दक्षिणे भागे । सुकेशी पद्मनयना सुनेत्रा कामदीपिका ।

प्रदीपिका सुकर्णी च रागसंयुक्तवेणिका । नवनीतप्रिया चाष्टौ चम्पकायाः उपसख्यः ॥

भाषायां अन्यनामानि वदन्ति । इत्यादौ चम्पकलतायाः स्थानं वर्णनम् ॥

कर्हपुर (वर्तमान में करहला) नामक ग्राम में मनुभूप नाम के अति विख्यात गोप रहते थे । उनकी भार्या का नाम सुकंठी था । इनके यहाँ सभी शुभ लक्षणों से युक्त तृतीया सखी श्री चम्पकलता जी प्रकट भईं ।

बृहन्नारदीय पुराणानुसार

भाद्रमास के शुक्लपक्ष में अनुराधा नक्षत्र शुभ योग में अष्टमी से युक्त सप्तमी तिथि में सूर्योदय काल से १४ घटी व्यतीत हो जाने पर उनका जन्मोत्सव हुआ । वहाँ पर नन्दनन्दन आये, अपने करकमल में उनका करकंज ग्रहण करके रास-क्रीड़ा की । यहाँ पर पूर्वविद्धा परित्याग करके सर्वदा परविद्धा सप्तमी ग्रहण करनी चाहिए ।

गौतमीये - चम्पकलता अपनी ८ सखियों को साथ लेकर अपने घर गईं । चम्पकलता का स्थान श्रीकृष्ण के दक्षिण भाग में है । इनकी ८ सखियों के नाम हैं –

सुकेशी, पद्मनयना, सुनेत्रा, कामदीपिका, प्रदीपिका, सुकर्णी, रागसंयुक्तवेणिका, नवनीतप्रिया ।

ततो चम्पकलता प्रार्थना मन्त्र :-

त्रैलोक्य मोहनायैव नमस्ते करहाभिध । गन्धर्वसुखवासाय विश्वावसुवरप्रद ॥ (भविष्योत्तर पुराण)

गन्धर्वों के सुख निवास स्थल विश्वावसु के वरदाता त्रिलोकी के मोहक 'करहवन' को नमस्कार है ।

ततो ललिता सरोवर स्नानाचमन मन्त्र :-

ललितास्नपनोद्भूत तीर्थराज नमोऽस्तु ते । ललितासरसे तुभ्यं सौभाग्यवरदायिने ॥ (भविष्योतरे पुराण)

ललिता जी के स्नान से उत्पन्न सौभाग्य वर देने वाले तीर्थ राज आप को नमस्कार है ।

ततो रास मण्डल मन्त्र :-

ललितामहदुत्साह गोपिकानृत्यरूपिणे । कृष्णक्रीडाभिरम्याय मंडलाय नमोऽस्तुते ॥ (भविष्योतरे पुराण)

ललिता जी के महान उत्सव रूप गोपिकाओं के नृत्य रूप कृष्ण क्रीड़ा से रमणीय मंडल को नमस्कार है ।

ततो कदम्ब खंड मन्त्र :-

कृष्णगोपालरूपाय गोपीगोभिरलंकृतः । कदम्बखंड गोष्ठाय सौख्यधाम्ने नमोऽस्तुते ॥ (भविष्योतरे पुराण)

गोपाल कृष्ण रूप गोप गोपियों से भूषित कदमखण्डी गोष्ठी सुखधाम रूप आपको नमस्कार है ।

ततो हिंडोल प्रार्थना मन्त्र :-

राधा कृष्णमहोत्साह ललितोत्सवहेतवे । ब्रह्मणा निर्मितायैव हिंडोलाय नमोऽस्तु ते ॥ (भविष्योतरे पुराण) राधा कृष्ण के महान उत्साह रूप ललिता जी के उत्सव के लिए ब्रह्मा जी से निर्मित हिन्डोल ! आपको नमस्कार है ।

ततो विवाह स्थल प्रार्थना मन्त्र :-

भद्रदेवीसखीरम्य विवाहोत्सवमांगल्यै: । ललिताग्रन्थिदत्ताय नमो वैवाहरुपिणे ॥

यहाँ भद्र सखी ने ललिता और कृष्ण के विवाह में गाँठ जोड़ी थी । सबसे जो प्रमुख बात है वह यह है कि यहाँ श्री उद्धव देवाचार्य जी, जो श्री हरिव्यास देवाचार्य जी के शिष्य थे, जिनका रास प्राकट्य में योगदान रहा है, वह रास यहीं करहला से ही प्रारम्भ हुआ था । रास प्राकट्य करके आप वंशीवट वृन्दावन रहे । अपने इष्ट कृपा पर गर्व से भरे रहने के कारण इनका नाम घमण्डी भी था किन्तु वह घमण्ड मिथ्या अहंकार का नहीं था, युगल रस का था । रासानुकरण के विषय में यह पद प्रसिद्ध है – **"घमण्डी रस में घुमड़ि रह्यो वृंदावन निजधाम ।**
बंशीवट तट वास कियो गायो श्यामा श्याम ॥" (श्रीध्रुवदासजी कृत बयालीस लीला भक्त नामावली)

रास बिहारी लाल दृगन ते दूर भयो जब । तिमिर ग्रसित भौ भाव नहीं जाने कोऊ तब ॥ श्री स्वामी हरिदास खास ललिता वपु तिनकौ । प्रकट करन भई रास महल ते आज्ञा जिनकौ ॥ नाम घमंड सनकादि सम्प्रदा रसमय जिनकी । अधिकारी रस मई समुझि निरमल बुधि तिनकी ॥ श्री मधुपुरी समीप घाट विश्रांत नाम तहँ । श्री आचारज विष्णु स्वामि मत्त पोषक है जहँ ॥ कही चलौ तिन पास आस मेरी वे पूजवे । सेवा रीत अलौकिक प्रगटी है तिन ब्रज में ॥ तिन ढिंग स्वामी गए कुशल पूछी बैठारे । कहो प्रिये सखि कवन हेतु यहाँ चरण पधारे ॥ तब स्वामी हरिदास कह्यो प्रभु अन्तरजामी । तुमते कछु नहि छिपौ कहा पूछत जगस्वामी ॥ ऐसो करो उपाय रास रस प्रगटे जन में । जो कछु इच्छा रही कहो तुम आगे मन में ॥ कोई पर्व निमित रहे तहं वामन राजा । श्री गोस्वामी कहयो लेहु कछु इन सों काजा ॥ प्राणायाम चढ़ाय रोकि दसहू इन्द्रि तब । कछु दिन पीछे कह्यौ सुनौ मेरे तुम जन अब ॥ नभ ते उतरत मुकुट सबै विश्वास दृढावन । सप्तताल विस्तरित जग मगत अति नगवरगन ॥ सबको दरसन भयौ मुकुट जब भूपर आयो । धूप-दीप नैवैद्य सबन लै ताहि चढायौ ॥ सबरे भूपन प्रष्न कियौ ताहि छिन प्रभु सौं । किहि कारण आगमन भयो सो कहो किन हमसों ॥ रास क्रीड़ा करौ कही यह बात जतावन । नहिं यामें कछु दोस यही है हमरी कामन ॥ ताम्र पत्र में मुहर करौ सबरे तुमहूं किन । कै कछु शंका होय करौ मेटूँ याहि छिन ॥ अपनी-अपनी मुहर सबी कर गये देस कूँ । मानत रैहैं सदा मोक्षदाता है हमकूँ ॥ सबही देखत गुप्त मुकट मौ ता ही अरसा । जै-जै नभ धुनि भई सुरन करी पुष्पन बरसा ॥ तब स्वामी हरिदास कही अब देर करत कित । छिन पल हमकों कोटि-कल्प सम बीतत है इत ॥ माथुर भक्ति परायण तिनकौं निकट बुलाये । परम मतो हम देउ अष्ट बालक मन भाये ॥ ताहि छिन ते गये धाये बालक लै आये । को कहैं तिनकी महिमा जो श्री प्रभु ने बुलाये ॥ श्री स्वामी हरिदास कियौं सिंगार प्रिया कौ । श्री आचारज देव कियो मोहन रसिया कौ ॥ पुनि वृंदावन आय रास मण्डल निरमान्यौ । वेद पुराण शास्त्र तंत्रन जा रीत बरवान्यौ ॥ ता मधि जुगल किसोर थापि पुनि सखि पधराई । आपुन कियो समाज कृष्ण लीला तब गाई ॥ महारास तब कियो लाल भये अंतरध्याना । वन-वन ढूंढत फिरै सखी कर-कर गुन गाना ॥ मुखिया सखि जु संग ताहि पिय छोड़ गये जब । जो जो जहँ की तहाँ रही पाई नाँही तब ॥ रसिक जनन के हृदय भयो अति ही दुःख दावन । प्रथम ग्रास में भयो मक्षिका को यह पातन ॥ माथुर अपने पुत्रन को माँगन जब आये । तब उनसों यह कह्यौ नहीं हमकूँ कहूँ पाये ॥ अति झगरौ तिन कियो तबै यह करी वारता । तुम्हरे पुत्रन को जू भई है तदाकारता ॥ हमको निश्चैं होय करो सोई कृत्य गुसाँई । तब उनके सब पुत्र लाल ढिंग दिये दिखाई ॥ अपने- अपने घरन माथुरन किये पलायन । घमंडदेव सो कह्यौ सुनों गुरु भक्ति परायन ॥ तुम ब्रज के बासीन मांहि कीजैं शिष शाषा । तिन सौं यह मारग जु चलाओ सुनी मम भाषा ॥ ऐसें आज्ञा दई गये अपने-अपने थल । पुन घमंड स्वामी गये ग्राम करहला माहि । उदयकरण अरु खेमकरण द्वै भ्राता द्विजवर । तिनहीं सों यह रास प्रथा चली सुनौ रसिकवर ॥

(रास सर्वस्व, द्वितीय निधि, स्वामी राधाकृष्ण)

नारायण भट्ट जी की रासानुकरण प्रियता ठौर ठौर रास के विलास लै प्रकट किये । जियें यों रसिक जन कोटि सुख पाए हैं ॥

भक्तमाल के टीकाकार प्रिया दास जी के अनुसार नारायण भट्ट जी केवल रास प्रेमी ही नहीं थे अपितु रास के विलास को अनेक स्थानों पर प्रकट भी कराया करते थे, इसलिए रसवेदी जनों के लिए कोटिशः आनन्द के भाजन बन गए थे । सम्वत् १६५०-९८ में विद्यमान भक्त शिरोमणि ध्रुव दास जी ने भी श्री नारायण भट्ट जी की रासानुकरण प्रियता का निम्नलिखित दोहे में समर्थन किया है । उन्होंने लिखा है –

भट्ट नारायण अति सरस ब्रज मण्डल सों हेतु । ठौर ठौर रचना करी प्रकट कियौ संकेत ॥

इसके बाद आचार्य नारायण जी ने जो श्रीकृष्ण आज्ञा से प्रेरित थे, सुन्दर ब्राह्मण बालक को कृष्ण वेष में तथा राधावेष में और अन्य बालकों को गोपीवेष में सजाकर सर्वत्र रासलीला कराई । कहीं कहीं गोपवेष में गो-वत्सों को चराते हुए कृष्ण लीला कराई, तो कहीं कालिय दमनादि एवं साँझी लीलाओं की भी रचना कराई, अन्य बहुत प्रकार की जो लीलाएँ कृष्ण ने की थीं, उन सभी लीलाओं का अनुकरण करवाया क्योंकि वे नारद थे । जिन लीलाओं को व्रतधारी मुनि और देवता नहीं प्राप्त कर सके उन लीलाओं के दर्शन का सुख सभी मनुष्यों ने प्राप्त किया । जिस दिन जैसी लीला कृष्ण ने की थी, उस दिन उसी स्थल पर भट्ट जी ने उसी लीला को कृष्ण लीला में दक्ष बालकों के द्वारा दर्शाया, तभी से सर्वत्र वनों में और उपवनों में, तीर्थों में और कुंजो में रासलीला प्रारम्भ हुई । वल्लभ कुल की यात्राओं में भी कृष्ण लीला स्थलियों पर रास लीला या दान लीला आदि का आयोजन होता है ।

करह वन प्रति वनों में आता है । इस प्रकार करहला रास का प्राकट्य स्थल माना जाता है । करहला नाम का एक यह भी कारण है कि चन्द्रावली की नानी का नाम भी 'कराला' था और यह गाँव उनका जन्म स्थल था । ब्रज में श्री नाथ जी की कई स्थानों पर बैठकें हैं, जहाँ वे श्री महाप्रभु वल्लभाचार्य के साथ पधारे थे : यहाँ भी श्री नाथ जी और महाप्रभु वल्लभाचार्य जी की बैठक है । साथ में गोसाँई जी एवं गोकुलनाथ जी की भी बैठक है । यहाँ कंकण कुण्ड है । इसी से इसे कंकण पुर भी कहते हैं । यहाँ कृष्ण को महारास का कंकण बांधा गया था । विवाह का कंकण भी बाँधा गया था । आकाश से उतरा मुकुट जिससे घमण्ड देव जी ने रास प्रचलित किया था, वह भी यहीं बैठक से आगे हवेली (मड़ोई) में हैं, जो वर्ष में एक दिन दिखाया जाता है । श्री बज्रनाभ जी की समाधि भी यहीं है, जो पूर्वकाल में जीर्ण शीर्ण अवस्था में थी, जिसका 'श्री मान विहारी लाल जी' की कृपा से जीर्णोद्धार हुआ ।

श्रीचित्रलेखाजी

अथ चित्रलेखास्थानवर्णनम् । गौतमीये - रंगवल्ली सुवल्ली च पद्मवल्ली मरीचिका । शिवनीली सती साध्वी ब्रह्मवल्ली इति स्मृताः ॥ इति चित्रलेखाया उपसख्यः, भाषायामन्यनामानि । चित्रलेखायाः श्रीकृष्णस्य दक्षिणे भागे स्थानम् । इत्यादौ चित्रलेखायाः स्थान वर्णनम् ।

चिकित्सपुर (वर्तमान में चिकसौली) में ब्रजोदार नाम के गोप रहते थे । इनकी तीन पत्नियाँ थीं । इन्दी, काँची, अवन्तिका । इनके यहाँ अवन्तिका के उदर से चित्रलेखा नाम की मनोहरा कन्या उत्पन्न हुई । भाद्रपद मास शुक्लपक्ष उत्तराषाढ़ा नक्षत्र नवमी से युक्त दशमी तिथि थी, यहाँ पूर्वविद्धा ग्रहण करनी चाहिए । इसमें गर्गाचार्य जी के द्वारा भाषित चतुर्थी सखी चित्रलेखा प्रकट भई । सूर्योदयकाल से ५-६ घटी व्यतीत हो जाने पर इनका जन्मोत्सव हुआ ।

किसी समय ये साँकरी खोर में आईं, वहाँ इन के विवाह के समय देव-गन्धर्वों ने गान किया । अनन्तर चित्रलेखा अपनी आठ सखियों के साथ घर को आईं । गौतमीये तन्त्रानुसार इनकी ८ सखियों के नाम - रंगवल्ली, सुवल्ली, पदवल्ली, मरीचिका, शिवनीली, सती, साध्वी, ब्रह्मवल्ली । ये चित्रलेखा जी की उप सखियाँ हैं, लोकभाषा में इनके अन्य नाम भी हैं । चित्रलेखा जी का स्थान श्री कृष्ण जी के दक्षिण में है ।

यहाँ की विचित्र लीला नागरी दास जी ने लिखी है । किसी समय नंदलाल ने हरे चनों की चोरी की थी । खेत वाली ने गाली दिया, किन्तु प्रेमवश स्वयं गहवर वन में चना छीलकर खिलाने लग गयी । लीला नित्य है अतः महात्माओं का अनुभव सत्य होता है । श्रीनाथ जी ने भी चतुर्भुज दास जी के साथ माखन चोरी की थी ।

चिकसौली के चना चुराये । गारी दै दौरी रखवारिन ग्वारिन सहित गुपाल भजाये ॥
हरे बूट दाबे बगलनि में स्वास भरे वन गह्वर आये । कहत आतुरे बोल लोल दृग हंसत हंसत सब बर न चढ़ाये ॥
हरे चावल, कोउ होरा करि वन की लीला लाल लुभाये । 'नागरिया' बैठी छकि हारी छील-छील नन्दलालहिं ख्वाये ॥

श्रीतुंगदेवीजी

अथासां तुंगदेव्यादीनां निवासस्थानवर्णनम् – ब्रह्माण्डे - अस्याः सख्यः समाख्याताः ब्रह्मणा निर्म्मिताः स्वयम् ।
वीरदेवी भद्रदेवी मनोदेवी मनोत्सवा ।कामदेवी नृदेवी च स्नेहदेवी मनोरमा ।
इत्यष्टौ कथिता सख्यः कामदेवेन पूरिताः । तुंगदेव्याः स्थानं श्रीराधायाः निकटे ।
श्रीकृष्णस्य वामभागे निवेशनम् इति तुंगदेव्याः स्थानवर्णनम् ॥

सम्मोहनतंत्रानुसार

वृषभानु पुर के पूर्व भाग में कमई नामक ग्राम है, जहाँ अंगद नाम के गोप व उनकी ब्रह्मकर्णी नाम की भार्या निवास करते थे । इन दम्पत्ति के यहाँ तुंगदेवी नाम की शुभलक्षणा कन्या उत्पन्न हुई । भाद्रपद मास शुक्लपक्ष षष्ठी से युक्त पंचमी तिथि स्वाती नक्षत्र एवं मंगलवार था । यहाँ सर्वदा परविद्धा ग्रहण करनी चाहिए पूर्वविद्धा नहीं ।

सूर्योदय काल से द्वादश घटी व्यतीत हो जाने पर तुंगदेवी जी का जन्मोत्सव हुआ ।

ब्रह्माण्ड पुराणानुसार

ब्रह्मा द्वारा सृष्ट इनकी आठ सखियाँ कही गई हैं –
वीरदेवी, भद्रदेवी, मनोदेवी, मनोत्सवा, कामदेवी, नृदेवी, स्नेहदेवी एवं मनोरमा, ये आठ सखियाँ कही गई है ।
तुंगदेवी जी का स्थान श्रीजी के निकट श्रीकृष्ण के वाम भाग में है ।

श्रीरंगदेवीजी

अथ रंगदेव्याः स्थानवर्णनम् – देवीपुराणे - अस्याः त्वष्टौ उपासख्यः श्रीदेवी कमलासना ।
वलिदेवी महादेवी रंजना कलिरंजना ।कामदेवी कलाकांता सर्वसौन्दर्य्यगर्व्विताः ।
रंगदेव्याः स्थानं श्रीकृष्णस्य वामभागे । श्रीराधायाः निकटे निवेशनस्थानम् ।
इत्यादौ रंगदेव्याः सप्तम्याः सख्याः स्थानवर्णनम् ॥

श्रीविष्णुपुराणानुसार

दक्षिण दिशा में डभारा नाम का गाँव है । यहाँ वीरभानु नाम के गोप रहते थे, ये बड़े बुद्धिमान थे, इनकी पत्नी का नाम सूर्यवती था । ये बड़ी गुणवती थीं । इनसे रंगदेवी नाम की सुन्दर कन्या उत्पन्न हुई ।

भाद्रपद मास की शुक्लपक्ष की त्रयोदशी शुभ तिथि थी । यहाँ पूर्व विद्धा ग्रहण करनी चाहिए । धनिष्ठा नक्षत्र में शुक्रवार को इनका जन्म हुआ । सूर्योदय काल से २१ घटी व्यतीत हो जाने पर श्री रंग देवी जी का जन्मोत्सव हुआ ।

देवी पुराणानुसार

इनकी ८ उपसखियों के नाम – श्रीदेवी, कमलासना, वलिदेवी, महादेवी, रंजनाये कलिरंजना, कामदेवी, कलाकान्ता ये सभी सौन्दर्य गुण से युक्त थीं । रंग देवी का स्थान श्रीकृष्ण के वाम भाग में है । ये श्रीजी के निकट विराजती हैं । डभारा नाम का कारण यह है कि श्री कृष्ण ने श्री राधा का अश्रुपूर्ण नेत्रों से (डबडबाई आँखों से) दर्शन किया । **'डभरारो ग्राम एई कृष्णेर ए खाने । भरिल नयने अश्रु राधिका दर्शने ॥'** (भक्ति रत्नाकर)

यहाँ नौबारी चौबारी है, 'ब्रजप्रेमानन्द सागर' के अनुसार श्रीजी यहाँ गुड़िया-गुड्डा खेलती थीं । "कबहूँ नौबारी चौबारी", यहीं पास में ही 'सूर्यकुण्ड' है, जो स्वामिनी जी द्वारा प्रकटित है क्योंकि सूर्य का आधिदैविक स्वरूप भानु लाड़ली जी का ही है । विट्ठल नाथ जी ने 'त्रिभंगी' नामक ग्रंथ में लिखा है कि नौबारी चौबारी देवियाँ थी, कुछ खण्डित मूर्तियाँ भी वहाँ पड़ी हैं । पास में 'श्याम शिला' है, जहाँ बैठने के विशाल प्रस्तर खण्ड हैं जहाँ कृष्ण बलराम गौचारण करते समय बैठते एवं श्री कृष्ण को यहीं से गुड़ियों से खेलती श्री राधा दिखाई पड़ती थीं । पास में 'रत्न कुण्ड' है जिसकी कथा नंदगाँव के मोती कुण्ड से जुड़ी हुई है ।

रत्नभूमिमये तीर्थे रत्नकुण्डसमाह्वय । कृष्णस्नपनसम्भूत रत्नोद्भव नमोऽस्तु ते ॥ (श्रीब्रजभक्तिविलास)

रत्नमयी भूमि वाले तीर्थ, हे रत्न कुण्ड नाम वाले, जो कृष्ण के स्नान से उत्पन्न, रत्नों से सम्भूत है, तुम्हें नमस्कार है । 'रत्नोद्भव' का अर्थ है – रत्नों की उत्पत्ति का स्थान अथवा जिससे रत्न उत्पन्न हुए । मुक्ता कुण्ड से जब मोती आये, तो वृषभानु जी और कीर्ति जी चिन्तित हुए कि हमने जो सगाई में मोती भेजे थे, उनसे अधिक सुन्दर नंदराय जी ने भेजे हैं, उनकी इस चिन्ता को देखकर श्रीजी ने यहाँ उन मोतियों से रत्न उत्पन्न किये और इनसे उत्पन्न रत्नों से श्रीजी का विवाह सम्पन्न हुआ । इसलिए इसका नाम रत्न कुण्ड हुआ । रत्नकुण्ड व मुक्ताकुण्ड की लीला से श्रीराधाकृष्ण की विवाहलीला स्पष्ट हो जाती है । यह परम्परा आज तक नन्दगाँव व बरसाने में चल रही है ।

श्रीसुदेवीजी

अथ सुदेवीनिवासस्थानवर्णनम् – नारदपञ्चरात्रे - अस्याः सुष्टुदेव्या उपासख्यस्त्वष्टौ प्रकीर्त्तिताः।

रतिक्रीडा बिशाला च अन्तिका कामलालिता । निवराजी महालीला कोमलांगीतिविश्रुताः।

अस्याः सुदेव्याः स्थानं श्रीकृष्णस्य ।वाम भागे श्रीप्रियायाः श्यामायाः निकटे स्थानम्।

एताश्च पट्टराज्ञ्यश्च अष्टौ सख्यश्च ताः स्मृताः । इति सुदेवीनिवासस्थानवर्णनम्।अथ पट्टराज्ञीनां वर्णनं समाप्तम्।

पद्मपुराण के अनुसार

पश्चिम दिशा में स्वर्ण पुर (सुनहरा) नाम का ग्राम है । वहाँ गौरभानु नाम के श्रेष्ठ गोप अपनी भार्या कलावती के साथ रहते हैं । वहाँ स्वर्णाचल नाम का पर्वत है । उस पर्वत के ऊपर ही गाँव बसा हुआ था, उसके ऊपर दिव्य रास-मण्डल भी है ।

उन गौरभानु के यहाँ कलावती जी के गर्भ से सुदेवी नाम की कन्या उत्पन्न हुई । भाद्रपद मास शुक्ल पक्ष की पंचमी युक्त चतुर्थी तिथि थी । यहाँ परविद्धा ग्रहण करनी चाहिए, पूर्वविद्धा नहीं । चित्रा नक्षत्र से युक्त सोमवार को सुदेवी जी का जन्म हुआ । सूर्योदय काल से दो घटी व्यतीत हो जाने पर सुदेवी जी का जन्मोत्सव हुआ ।

नारदपंचरात्र के अनुसार

इनकी आठ उपसखियों के नाम – रतिक्रीड़ा, विशाला, अंतिका, कामलालिता, निवराजी, महालीला, कोमलांगी ।

इन सुदेवी जी का स्थान श्रीकृष्ण के वाम भाग में है, ये श्री प्रिया जी के निकट विराजती हैं ।

कवित्त – ऊँचे गाँव ललिता सखी बिसाखा जू आजनोक में चित्रा जू चिकसौली में सब कारज सम्हारे हैं ।
चम्पकलता करहला में प्रगट भई रंगदेवी डभारा में संग सुख सारे में ॥ सुनहरा सुदेवी इन्दुलेखा जू राकोली में
तुंगविद्या जू कमई धाम धारे हैं । कहत कवि 'देव' श्री राधा जू की अष्ट सखीं तिनके गाँव धाम नाम उचारे हैं ॥

सच्चा प्रेम 'समर्पण भाव'

प्रेम में बिकना सीख जाओ अर्थात् सच्चा प्रेम समर्पण चाहता है, श्रीभगवान् में सर्वात्मभाव की शरणागति हो जाए, यही परम प्रेम की पहिचान है । कृष्ण को खरीदना चाहते हो तो पहले बिकना सीखो । प्रेम में सौदा कब होता है?

जब पहले बिकता है खरीदने वाला । अपना सब कुछ कृष्ण को देना सीखो । तुम बिक जाओगे तो कृष्ण को खरीद लोगे । श्रीशुकदेवजी कहते हैं – **'गोपीभिः .... दारुयन्त्रवत् ॥'** (श्रीभागावतजी १०/११/७)

श्रीकृष्ण गोपियों के हाथों ऐसे बिके कि कठपुतली की तरह; जैसे गोपियाँ नचाती थीं वैसे ही नाचते थे । ऐसे हैं श्रीकृष्ण कि वह अपने-आपको भी बेच देते हैं भक्तों के हाथों, फिर भक्त को खरीदते हैं । गोपी कहती हैं – **"आजु गई दधि बेचन हौं सखि, उलटी आप बिकाई री ।"** हम बिक जाएँ, यही प्रेम है । अभी तो हमें स्त्री ने खरीदा है, बेटे ने खरीदा है, रोग ने खरीदा है, भोग ने खरीदा है; प्रेम में कैसे बिका जाता है, ये समझो ? हमारे हृदय में श्रीकृष्ण के सिवाय कोई नहीं आए, सबकी याद हटा दो । सबको याद करने से हम कमजोर बनते हैं । किसी का बच्चा बीमार है तो याद करने से क्या होगा ? क्या ठीक हो जायेगा ? 'नहीं' । जैसे दुनिया में एक छोटा-सा बच्चा है, उसे कौन पालता है ? कौन दूध पिलाता है ? कौन खिलाता है ? उसकी माँ, उसे तो कुछ भी नहीं पता है, खाली रो देता है । रोने के बाद कोई आती है और दूध पिलाती है, टट्टी-पेशाब धो जाती है, कपड़ा ओढ़ा देती है । बस वह रो देता है, ये क्या है ? ये ममता की दुनिया है । उस प्रेम की नकल है । भगवान् स्वयं कहते हैं कि देखो ! एक बात सुनो व समझो, "मैं सर्वशक्तिमान होने पर भी प्रेम के बंधन में बँधता हूँ ।" पूछा तो क्या प्रेम आपसे बड़ा है ? भगवान् बोले कि प्रेम हमारा स्वरूप है । भगवान् अपने-आप अपने से बँधते हैं । अपनी स्वरूप शक्ति प्रेम से बँधते हैं । यदि प्रभु को पाना है तो ये सोच लो कि हम अब दुनिया में किसी की भी याद नहीं करेंगे । एकमात्र श्रीकृष्ण ही सच्चे हैं वाकी सब झूठे हैं । हम भी बिक सकते हैं अगर हमारी सभी क्रियायें प्रभु के लिए हो जाएँ । तुम्हारा बात करना भी भजन हो जाय कि बात करेंगे तो प्रभु की करेंगे, तुम्हारा भोजन करना भी प्रभु के लिए हो जाय कि भोजन करेंगे ताकि शरीर से प्रभु का भजन करेंगे । हर क्रिया भजन हो जाय । ऐसा करते-करते एक दिन किसी से बात करते समय भी ये लगेगा कि कृष्ण से बात कर रहे हैं । हम ये भूल जायेंगे कि ये स्त्री है या ये गोरी है; बस ये ही याद रहेगा कि भगवान् से ही बात कर रहे हैं । अगर थोड़ा-सा भी जीव के हृदय में प्रेम आ जाय तो धक्का भी देने पर 'प्रभु' उसके हृदय से नहीं जायेंगे । 'प्रेम' रसमय सबसे श्रेष्ठ साधन है । 'प्रेम' निर्भय उपासना है । जैसी एकता प्रभु से प्रेम साधन से हो पाती है, वैसी और किसी साधन से नहीं हो पाती । भ्रमर गीत में गोपियाँ कहती हैं कि भौंरे ! तू मुझे ज्ञानयोग की शिक्षा देता है, पर इसे सुने कौन ? 'ज्ञान' को वह सुनता है, जिसे ब्रह्माकार वृत्ति बनानी हो । योग का लक्षण है कि चित्त निरोग हो जाये । **"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ॥"** (योगसूत्र १/१) परन्तु हमारे पास तो चित्त ही नहीं, हमारे पास तो मन ही नहीं । हमारे तो एक ही मन था जो श्रीकृष्ण के साथ चला गया है । **'ऊधौ मन न भये दस बीस । एक हुतो सो गयो श्याम संग, को आराधे ईश ॥'** ये प्राण यहाँ क्यों हैं ? हम इसलिए जीती हैं क्योंकि हमें आशा है कि कृष्ण आयेंगे । वे जब आयेंगे और हमें नहीं पायेंगे तो दुःखी होंगे । हम अपने लिए नहीं जी रही । एक विरहनी कहती है – **"कागा सब तन खाइयो चुन-चुन खइयो माँस । दो नैना मत खाइयो स्याम मिलन की आस ॥"** इन नेत्रों को श्यामसुन्दर कभी दिखाई देंगे इसकी आस है । ये प्रेम की दशा है । कृष्ण द्वारिका आये तो सब रानियों ने अपनी आँखों के आँसुओं को रोक दिया कि हमारे आँसू देखकर कृष्ण को दुःख होगा । हमारे प्यारे कृष्ण को ये न हो जाये कि हम रो रही थीं । अगर उनके हृदय में जरा-सा भी खेद आ गया तो प्रेम, प्रेम नहीं रहेगा । ये तो द्वारिका की रानियों के बारे में है । गोपियों का तो कहना ही क्या है ? वे कहती हैं कि अगर कृष्ण को वहाँ सुख है तो यहाँ न आवें । उद्धव ! तुम कृष्ण को यहाँ की करुण कहानी मत कहना । इसी गोपी भाव पर किसी ने सुंदर पद लिखा था । राधारानीयमुना के तट पर खड़ी हैं, श्रीयमुनाजी से कह रही हैं कि हे यमुने ! तू वृन्दावन से मथुरा बहती है तो तुम्हारे किनारे श्यामसुंदर आते होंगे और हमारा हाल पूछते होंगे तो हे यमुने ! हमारे हृदय का प्रेम कहना, पर हमारी पीड़ा मत कहना । हमको कितना प्रेम है ये तो कह देना, पर हमको कितना दर्द है ये मत कहना । आगे कहती हैं कि कहना तेरी राधा नित मेरे तट पर आती है और तेरे हाथों छुई गगरी में मेरे तट से जल भर ले जाती है । तुम्हारे हाथों से छुई मटकी पानी भरने नहीं बल्कि इस याद में लाती है कि इसे कन्हैया ने छुआ था । पानी भरने आती तो है मगर गगरी को अपने से चिपटाने के लिए । 'पानी भरने

आती है' ये तो कहना, पर कितने आँसू गिरा जाती है, ये मत कहना । कहना पूर्णिमा की रातों में मधुवन के वनों में जाती है, पर वहाँ अपने वस्त्रों को आँसुओं से कितना भर ले जाती है, ये मत कहना । कहना तेरी याद में फूल फिर खिल आये हैं, कोयलें गीत गाती हैं तेरी याद में, ये भी कहना परन्तु उसे सुनकर मन कितना अधीर होता है, ये मत कहना । कहना 'राधा' साँझ-सबेरे तेरी काली गईया को अपने हाथों से दोह आती है, पर दूध कितना जमीन पर गिरा, कितना बर्तन में पड़ा, ये मत कहना क्योंकि प्रेम में दूध कितना जमीन पर गिरा, कितना बर्तन में पड़ा, ये पता ही नहीं चलता । कहना 'राधा' मेरे तट पर मंगल गीत गाती है । 'आयेंगे दो-चार दिन में श्याम' मईया को समझाती है किन्तु निराशा में डूब जाता आशा का तीर, ये न कहना । आप समझो प्यार क्या है ? प्यार दूसरे को सुख देना है । संसार में प्यार नहीं है क्योंकि हर इंसान प्यार लेना चाहता है । हर इंसान सुख लेने के लिए प्यार करता है और हम सब समझते हैं कि हम सच्चा प्यार करते हैं । **"मिथो भजन्ति ...... तद्धि नान्यथा ॥"** (श्रीभागवतजी १०/३१/१७) इसी में जीवन चला जाता है, सारा जीवन मिट्टी में मिल जाता है । श्रीप्रहलादजी ने बलि को गोद में बैठाकर यह शिक्षा दी थी – **"किमात्मनानेन जहाति ......किमिहायुषो व्ययः ॥"** (श्रीभागवतजी ८/२२/९) "बेटा ! अपने शरीर को कभी भी प्रेम मत करना क्योंकि ये बुढ़ापा आते ही हमारा साथ छोड़ देता है ।" बेटा, पति, स्त्री आदि सब हैं, इन्हें डाकू समझना । डाकू तो फिर भी बन्दूक की नौक से छीनता है पर ये सब हँसकर छीन लेते हैं । डाकू जब धन छीनता है तो दुःख होता है और दुःख में इंसान को भगवान् की याद आती है पर जब बेटा-बहू मीठे-मीठे बन कर छीनते हैं तो भगवान् की याद भी नहीं आती । ये तो डाकुओं से भी ज्यादा खतरनाक हैं । कृष्ण से प्रेम करते चलो, अपने जीवन की चिन्ता मत करो । जिसको न आग जला सके, न पानी गला सके, समस्त भय रहित जो है, वह है 'प्रेम' । अपने श्रीइष्ट के चरणों से अनुराग करो । श्रीभगवान् के चरणों की शरण में गये बिना किसी भी साधन से माया को नहीं जीता जा सकता, क्योंकि एक तो ये माया दुस्तर है, दूसरा हमारा साधन भी सीमित है । किन्तु यदि भगवान् की कृपा दृष्टि पड़ जाये तो निश्चित वहाँ से माया भाग जायेगी । भगवान् का स्वभाव है कि वो अपने आश्रित के दोष नहीं देखते और यदि उसमें थोड़ा-सा भी गुण होता है तो प्रभु उसी से रीझ जाते हैं । तुम पापी हो, पुण्यात्मा हो, भले हो, बुरे हो, ये सब मत सोचो; ऐसा सोचना तुम्हें दुर्बल बना देगा । केवल प्रभु के चरणों का ध्यान करो, उनके चरणों के आश्रय से अनन्त पाप नष्ट हो जाते हैं । हमें सिर्फ इतना सोचना है कि हम उनके चरणों में कैसे जायें ? महत्व भले या बुरे का नहीं है अपितु इस बात का है कि हम जैसे भी हैं प्रभु के हैं । इसी बात को सूरदास जी ने अपने पद में कहा कि – "जो हम भले बुरे सो तेरे । सब तजि तुम सरनागत आयौ, दृढ़ करि चरन गहेरे ॥" हम किसी और के नहीं हैं । हमको किसी और से लेना देना नहीं है । भगवान् का तो विरद है कि चाहे कोई सारे संसार का द्रोही है, सारे संसार का कत्ल करके आया है, तब भी उसे नहीं त्यागते । "सरन गएँ प्रभु ताहु न त्यागा । बिस्व द्रोह कृत अघ जेहि लागा ॥"

आप लोगों ने सुना होगा कि एक बार अमेरिका ने जापान में बम गिराया था । जो व्यक्ति हवाई जहाज से बम को गिराने के लिए गया था, जब उसने बम गिरा दिया तो वो दूर से दूरबीन में देखने लगा कि क्या हुआ? वहाँ से उसने देखा कि लाखों लोग तड़फ रहे हैं । जहरीली गैस से लोगों का दम घुट रहा है और वे तड़प-तडप कर मर रहे हैं तो यह देखकर वह व्यक्ति पागल हो गया क्योंकि उसने विश्व द्रोह किया था । यस्य नाहड़कृतो ..... हन्ति न निबध्यते ॥ (गी. १८/१७) भगवान् कहते हैं कि अगर तुम इतने बड़े पापी भी हो कि विश्व द्रोह करके आये हो, परन्तु यदि तुम मेरी शरण में आ जाओ तो तुरन्त उसी समय क्षमा कर दिये जाओगे । भगवान् इतने बड़े क्षमाशील हैं कि तुम जैसे भी हो यदि भगवान् की शरण में आ गये तो जैसे लोहा पारस के स्पर्श से सोना बन जाता है वैसे ही तुम भी उसी समय सोना बन जाओगे अर्थात् तुम्हारे सब पाप नष्ट हो जाएँगे । सूरदास जी कहते हैं –

बड़ी है राम-नाम की ओट । सरन गएँ प्रभु काढ़ि देत नहिं, करत कृपा कौ कोट ॥ बैठत सबै सभा हरि जू की, कौन बड़ौ को छोट ? सूरदास पारस के परसैं मिटति लोह की खोट ॥

श्री हनुमानजी
जन्मोत्सव
(चैत्र पूर्णिमा)

श्रीराम-प्राकट्य
महोत्सव
(चैत्र, शुक्ल, नवमी)

RNI REFERENCE NO. 1313397- REGISTRATION NO. UP BIL-2017/72945-TITLE CODE UP BIL-04953 POSTAL REGD.NO. 093/2024-2026 श्री मान मन्दिर सेवा संस्थान के लिए प्रकाशक/मुद्रक एवं संपादक राधाकांत शास्त्री द्वारा 'गुप्ता प्रिन्टिंग प्रेस, खरौट गेट, कोसीकलाँ, मथुरा. उत्तरप्रदेश' से मुद्रित एवं मान मन्दिर सेवा संस्थान, गह्वरवन, बरसाना, मथुरा (उ.प्र.) से प्रकाशित,AGRA/WPP-12/2024-2026 AT 31.12.26